शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 10 अंक : 12 1 जुलाई, 2018

(आषाढ़, विक्रम संवत् 2075)

संस्थापक
स्व. मुकुन्दराव कुलकर्णी

❖

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक
सन्तोष पाण्डेय

❖

सह सम्पादक
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी ❑ भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. शिवशरण कौशिक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी
बसन्त जिन्दल ❑ नौरंग सहाय भारतीय
कार्यालय प्रभारी
आलोक चतुर्वेदी : 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा
चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

जीवन निर्माण की शिक्षा और संस्कार ❑ शिवशरण कौशिक

जीवन को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का अभ्यास भी प्रमुख संस्कारों में से एक है। जीवन की जड़ता को तोड़कर पुरुषार्थ से, ऊर्जा से, सम्यक चेतना से जीवन को देखने, समझने और जीने की कला संस्कार ही तो है। तर्क तथा अध्यात्म के सम्मिलन से एक व्यावहारिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है जिससे हमारी तात्कालिक तथा भविष्य की समस्याओं का समाधान तो मिलता ही है साथ ही संपूर्ण जीवन सार्थक भी होता है।

15

अनुक्रम

4.	संस्कार निर्मात्री हो शिक्षा	- सन्तोष पाण्डेय
6.	शिक्षा का अधिष्ठान : अध्यात्म	- वासुदेव प्रजापति
10.	संस्कार आधारित शिक्षा : आज की आवश्यकता	- डॉ. बुद्धमति यादव
12.	संस्कार व शिक्षा	- डॉ. सुमन बाला
18.	संस्कार निर्माण हो शिक्षा का ध्येय	- विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
20.	संस्कार का अर्थ और आवश्यकता	- डॉ. दिनेश शर्मा
22.	संस्कृति परिष्करण शिक्षा से संभव	- बजरंग प्रसाद मजेजी
24.	संस्कार सृजन का आधार : आर्ष महाकाव्य	- प्रो. मधुर मोहन रंगा
28.	गुण-कर्म पर आधारित है - वर्ण भेद	- मुरलीधर वैष्णव
30.	Concept and need of Sanskar	- Dr. T.S. Girishkumar
34.	Is Education Really Imparting Cultural ...	- Prof. P.C. Agarwal
44.	धर्म व पन्थ निरपेक्षता	- डॉ. रुचि रमेश
46.	भारत, भारतीयता और शिक्षा	- प्रो. सतीश कुमार
48.	शिक्षा और भगिनी निवेदिता	- उमेश कुमार चौरसिया
50.	सिविल सेवा परीक्षा में अंग्रेजी बनाम हिन्दी	- डॉ. विजय अग्रवाल
52.	समग्र शिक्षा नीति की ओर बढ़ते कदम	- डॉ. रेखा भट्ट
56.	देश के विकास में पंचायतों की भूमिका	- डॉ. अनीता मोदी
58.	गुणात्मक शिक्षा हेतु कौशल विकास	- रामचन्द्र स्वामी
60.	उच्च शिक्षा में तदर्थवाद	- आर. के. सिन्हा
62.	स्कूल मत भेजना	- संदीप जोशी
64.	श्रेय साधिका भारतीय गुरु परम्परा	- डॉ. ओमप्रकाश पारीक
67.	प्राचीन भारतीय समाज में समरसता	- डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा
71.	आज्ञा पालन (कुटुम्ब प्रबोधन-चतुर्थ अध्याय)	- हनुमान सिंह राठौड़
74.	शैक्षिक समाचार	
75.	गतिविधि	

Skewed Portrayal of Indigenous Knowledge System

❑ Dr. Geeta Bhatt

36

Half of the present population born in post independent India in an average age bracket of 25-30 years has been impressed upon that education and modernization have been somehow associated with European travellers, missionaries and the British occupation of this country.

संस्कार निर्मात्री हो शिक्षा

❑ **सन्तोष पाण्डेय**

संपादकीय

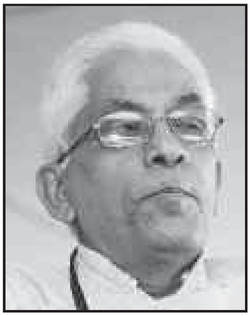

शिक्षा व मातृभाषा ज्ञानार्जन व कौशल विकास के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वाह की योग्यता व क्षमता सृजित करने का सर्वाधिक शक्तिशाली माध्यम है। परिवार, पड़ौस व निकटवर्ती समाज तो संस्कार निर्मात्री संस्थाएँ हैं ही। इनकी उपादेयता कमतर नहीं आँकी जा सकती है। परन्तु व्यक्ति अपने जीवन का एक बड़ा भाग शिक्षित होने में लगाता है। भाँति-भाँति के व्यक्तियों से संप्रेषण सद्भाव, सहयोग, सहकारिता आदि मूल्यों को समझने व उनका भाग बनने का पर्याप्त अवसर मिलता है। धर्म व पंथ में भेद किया जाय और धर्म शब्द की आत्मा के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था व भाषा नीति पर विचार कर निर्णय पर पहुँचा जाय और उसे मनसा, वाचा, कर्मणा की प्रतिबद्धता के साथ लागू किया जाय।

भारतीय जीवन दृष्टि व विश्व दृष्टि मूलत: अध्यात्म व धर्म आधारित तथा प्रकृति के साथ सहयोग पर आधारित रही है। इन पर आधारित अपने शाश्वत जीवन मूल्यों के कारण विश्व की प्राचीनतम व दीर्घजीवी संस्कृति के रूप में यह आज भी पुष्पित व पल्लवित हो रही है। भारत की सांस्कृतिक विरासत शाश्वत व चिरस्थायी रूप ले चुकी है। यह विरासत धर्म, परम्पराओं व इतिहास का संमिश्रण मात्र होने से दीर्घजीवी नहीं है, वरन् सामाजिक समरसता, सद्भाव, विशालता, विश्वबंधुत्व एवं प्रगतिशीलता के कारण अनेकानेक झंझावातों के बावजूद जड़े जमाये खड़ी है किन्तु पाश्चात्यीकरण, भौतिकवादी दृष्टिकोण, तार्किकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण व औद्योगीकरण को विकास का पर्याय मानने से भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक आधार शिथिल हुआ है जिससे वर्तमान में शिक्षा-व्यवस्था भारतीय संस्कृति व संस्कारों का वाहक बनने के स्थान पर मिश्रित संस्कृति को पुष्ट करने वाली बन गई है। इस मिश्रित संस्कृति के व्यक्तियों में सामाजिकता के स्थान पर वैयक्तिक हित प्रधान होते जा रहे हैं। नैतिक व श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के स्थान पर अनैतिक आचरण, भ्रष्टाचार, संकुचित जातिवाद, क्षेत्रीयतावाद व पक्षपातपूर्ण आचरण, कर्तव्य-विमुखता, दायित्वहीनता प्रबल होती प्रतीत हो रही हैं। अध्यात्म आधारित सुख व खुशहाली के स्थान पर भौतिकतावादी संतुष्टि जीवन का ध्येय बन रही है। यह कोई सुखद स्थिति नहीं है। स्वातंत्र्योत्तर काल में अनेक शिक्षा आयोगों व शिक्षाविदों की अनुशंसाओं के बावजूद पंथनिरपेक्षता के स्थान पर धर्मनिरपेक्षता की आड़ में तथा वामपंथी विचारधारा के प्रभाव में शिक्षा को संस्कार आधारित बनाने के प्रयासों को प्रोत्साहित नहीं किया गया। समाज की लचीली वर्ण व्यवस्था को संकीर्ण सोच वाली कठोर जाति व्यवस्था में परिवर्तित होने से सामाजिक सहयोग के स्थान पर संघर्ष व पंथ के स्थान पर धर्म शब्द के उपयोग सामाजिक सद्भाव, साम्प्रदायिकता में व भारत भूमि के पुत्रों का सहयोग, समन्वय व संरक्षण भी प्रकृति के अत्यधिक दोहन में बदलने से पर्यारण को अपूरणीय क्षति हुई है। अब भी समय है कि धर्म, संस्कार व संस्कृति को सही रूप में समझें, स्वीकारें व आचरण में लायें। इसके लिये संस्कार व संस्कृति के वाहक समाज, परिवार, निकट पड़ौसी, शिक्षा संस्थानों व मातृभाषा को पुष्ट करें। इनमें शिक्षा व मातृभाषा सर्वाधिक महत्त्व के हैं, जिनसे पुन: संस्कारों से युक्त श्रेष्ठ चारित्रिक गुणों वाले व्यक्तियों का निर्माण किया जा सकता है।

हिन्दू जीवन पद्धति जो स्वयं में भारतीय भू-भाग की संस्कृति का परिचायक है को समझने के लिये धर्म, संस्कार व संस्कृति शब्दों को सही

रूप में समझना आवश्यक है। सर्वप्रथम धर्म को सही रूप में समझना आवश्यक है। धर्म का अभिप्राय उपासना पद्धति से कतई नहीं है। धर्म का अर्थ धारण करने योग्य आचरण से है। ऐसा आचरण जो समाज के नैतिक मूल्यों, परंपरागत व्यवहार, आदर्शों व मानकों के अनुरूप हो। जीवन के चारों पुरुषार्थों- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म को आधार माना गया है। धार्मिक नियमों के मुख्य प्रेरणा स्रोत वेद, उपनिषद्, पुराण, श्रीमद्भागवत गीता, रामचरित मानस जैसे उत्कृष्ट ज्ञान के भण्डार रहे हैं। मनुष्य मूलत: एक पशु ही है, जिसमें काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या, अहम आदि जन्मजात अवगुणों के रूप में विद्यमान हैं, जिनका परिहरण संस्कारों द्वारा किया जा सकता है। संस्कार परिमार्जन की वह प्रक्रिया है, जिसके सतत् अभ्यास से श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को व्यक्ति के व्यक्तित्व में समाहित किया जा सकता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व में समाहित होकर ये जीवन मूल्य आचरण में लाये जाते हैं, तो यह संस्कृति का रूप ले लेते हैं। भौतिक प्रगति को जब संस्कृति के अनुरूप बनाया जाना है, तो यह सभ्यता बन जाती है। संस्कार, संस्कृति व सभ्यता इन सभी को अन्योन्याश्रित बनाने में मातृभाषा मुख्य सूत्र होती है। वास्तव में मातृभाषा ही संस्कार सृजन व संस्कृति की आत्मा होती है। भारतीय संस्कृति व संस्कार निर्माण को शिथिल करने में सबसे बड़ा योग अंग्रेजी भाषा का है। अंग्रेजी भाषा की लगभग अपरिहार्यता ने व्यक्ति व समाज के विचारों व दृष्टिकोण को मूलत: ही बदल दिया है, अर्थ व संदर्भ बदल दिये हैं। उदाहरण के लिये धर्म, रिलीजन का पर्याय नहीं है। मातृ- भाषा को अपनाये बिना संस्कारों व संस्कृति की व्यक्तिगत व सामाजिक आचरण पर सुदृढ़ पकड़ नहीं बन सकती है।

भारतीय जीवन पद्धति में संस्कारों का प्रभाव सर्वव्यापी रहा है। वर्ण व्यवस्था व आश्रम व्यवस्था में आयु व व्यवसायानुसार मान्य मानक व्यवहारों को संस्कार का रूप दिया। हिन्दू पंथ व्यवस्था में मनुष्य के जन्मपूर्व से लेकर मृत्यु उपरान्त तक अनेक संस्कार किये जाते हैं। गर्भाधान संस्कार पुंसवन संस्कार, सीमन्तोन्नयन संस्कार, जातकर्म संस्कार, नामकरण संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार, चूड़ाकर्म संस्कार, कर्णवेध संस्कार, विद्यारंभ संस्कार, उपनयन संस्कार, वेदारम्भ संस्कार समावर्तन संस्कार, विवाह संस्कार व अंतेष्टि संस्कार ये सभी संस्कार मनुष्य जीवन की विभिन्न अवस्थाओं यथा- जन्म पूर्व, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था व वयस्कावस्था तथा मृत्युपरान्त अवस्था में आयु के अनुकूल व्यवहार परिवर्तन करते हैं। ये संस्कार उस परिवर्तन को स्वीकार कर उसके अनुरूप आचरण करने के शक्तिशाली माध्यम रहे हैं। इन संस्कारों के परिपालन में सर्वाधिक शैथिल्य दृष्टिगोचर हुआ है। व्यक्ति पर समाज का प्रभाव कमजोर पड़ा है। धर्म के अनुरूप आचरण नहीं करने के कारण चरित्र व नैतिकता कमजोर हुये हैं।

मनुष्य के स्वभावगत अवगुणों या असंस्कारित व्यवहार के कारण चारित्रिक दुर्बलताएँ मुखर हुई हैं। आज देश में सर्वत्र स्वार्थ, लोलुपता, अनैतिक आचरण व सभी प्रकार से मान्य मानक व्यवहारों से परिहरण एक राष्ट्रीय सांस्कृतिक त्रासदी बन गयी है। पाश्चात्यीकरण व भौतिकतावादी वर्चस्व ने प्राचीन संस्कारों व परंपराओं को तो प्रभावहीन किया है, परन्तु नये वातावरण व पर्यावरण के अनुरूप नये मानक व्यवहार व संस्कारों का निर्माण नहीं किया है। इससे समाज में भ्रम की स्थिति बनी है। आवश्यकता है कि इस भ्रम की स्थिति को समाप्त करने के लिये प्राचीन संस्कारों एवं परिवर्तित आचरणीय मानकों के बीच समन्वय का मार्ग निकालकर नये नैतिक, धार्मिक, प्रजातान्त्रिक, सामाजिक, वैयक्तिक, व्यावसायिक, सांस्कृतिक, व्यवहृत मानकों को सबल किया जाय व समन्वित संस्कारों का पिष्टपेषण किया जाय।

शिक्षा व मातृभाषा ज्ञानार्जन व कौशल विकास के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वाह की योग्यता व क्षमता सृजित करने का सर्वाधिक शक्तिशाली माध्यम है। परिवार, पड़ौस व निकटवर्ती समाज तो संस्कार निर्मात्री संस्थाएँ हैं ही। इनकी उपादेयता कमतर नहीं आँकी जा सकती है। परन्तु व्यक्ति अपने जीवन का एक बड़ा भाग शिक्षित होने में लगाता है। भाँति-भाँति के व्यक्तियों से संप्रेषण सद्भाव, सहयोग, सहकारिता आदि मूल्यों को समझने व उनका भाग बनने का पर्याप्त अवसर मिलता है। व्यक्ति का जीवन मर्यादित संयमित, अनुशासित, नैतिक गुणों से परिपूर्ण व श्रेष्ठ चारित्रिक गुणों से युक्त होता है, यदि शिक्षा-दीक्षा उचित वातावरण में हुई हो या संस्कारित हुई हो। परन्तु प्राचीन संस्कार निर्मात्री शिक्षा व गुरुकुल परंपरा के पराभव से जो मूल्य व्यवस्था आज विद्यमान है वह भारतीय जीवन पद्धति के अनुरूप नहीं है। इस तथ्य को स्वीकारते हुये ही विभिन्न शिक्षा आयोगों, समितियों, शिक्षाविदों व सामाजिक कार्यकर्ताओं ने शिक्षा को मूल्य आधारित बनाने पर बल दिया है। अब समय आ गया है कि धर्म व पंथ में भेद किया जाय और धर्म शब्द की आत्मा के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था व भाषा नीति पर विचार कर निर्णय पर पहुँचा जाय और उसे मनसा, वाचा, कर्मणा की प्रतिबद्धता के साथ लागू किया जाय। समग्र शिक्षा की धारणा पर आधारित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्माण की प्रक्रिया में है। शिक्षा को व्यक्ति निर्माण के साथ-साथ राष्ट्र निर्माण का प्रभावशाली व शक्तिशाली साधन बनाने की दृष्टि से संस्कार निर्माण के लक्ष्य को प्रमुखता दी जाय। संस्कार निर्माण की प्रक्रिया शिक्षा की निश्चित अवधि या स्तर से संबंधित नहीं वरन् संपूर्ण शिक्षा अवधि व सभी स्तरों पर विभिन्न गतिविधियों, पाठ्यक्रमों व पाठ्येतर प्रवृत्तियों का अभिन्न बन कर जारी रहे, यह व्यवस्था अपेक्षित है। ❑

शिक्षा का अधिष्ठान : अध्यात्म

आज की शिक्षा जिस विज्ञान के अधिष्ठान पर प्रतिष्ठित है, वह तो भौतिक है। हमारे देश की जीवन रचना में भौतिक आयाम सांस्कृतिक आयाम का एक अंग है, अधिष्ठान नहीं। इसलिए हमारे यहाँ भौतिकता को स्वीकार किया गया है, उसे हेय नहीं माना है। तथापि संस्कृति के प्रकाश में ही उसे स्वीकारा गया है। भौतिकता को मुख्य न मानकर उसे संस्कृति का अंग मानने से भौतिकता भी अधिक समृद्ध, अधिक सार्थक तथा अधिक कल्याणकारी होती है। यह भारत की सहस्त्रों वर्षों की जीवन व्यवस्था ने सिद्ध कर दिया है। अतः आवश्यक है कि हमें सभी विषयों के भौतिक नहीं अपितु सांस्कृतिक स्वरूप का विचार करना चाहिए।

❑ **वासुदेव प्रजापति**

हमारे देश की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का विचार करने पर ध्यान में आता है कि आज की शिक्षा में 'अध्यात्म' पूर्णतया अनुपस्थित है। इतना ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण ज्ञान क्षेत्र अधिष्ठान के बिना खड़ा है। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में घोर अनवस्था एवं भटकाव विद्यमान है। आज अज्ञानतावश विज्ञान को अध्यात्म का स्थान दे दिया गया है, जो विज्ञान प्राकृतिक शास्त्रों के अन्नमय और प्राणमय कोश तक ही सीमित है, भला वह तात्त्विक एवं सामाजिक शास्त्रों का आधार कैसे बन सकता है? यह तो एक असम्भव बात को सम्भव बनाने जैसा 'पर्वत पर खोदे कुआँ, कैसे निकसे तोय' जैसा प्रयास ही है।

विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, माध्यमिक, प्राथमिक एवं पूर्व प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा योजना में पढ़ाये जाने वाले विभिन्न विषयों के अंगांगी भाव को विस्मृत कर दिया गया है। जैसी स्थिति पोपा बाई के राज में थी – ''टके सेर भाजी टके सेर खाजा'' वही स्थिति आज बनी हुई है। पढ़ाये जाने वाले सभी विषयों को स्वतंत्र व समान रूप से पढ़ाया जा रहा है। कौनसा विषय अंगी है और कौनसा विषय उसका अंग है ? इसका भान ही नहीं है। जैसे 'प्राणविज्ञान' अंगी है और प्राणिशास्त्र व वनस्पतिशास्त्र उसके अंग हैं परन्तु तीनों ही विषयों का अंकभार समान है, सब विषयों के प्रश्नपत्र सौ-सौ अंकों के होते हैं। यह ज्ञान के क्षेत्र का आतंक है, इससे समाज जीवन में सभी प्रकार की विशृंखलताएँ निर्माण हुई हैं। ज्ञान के क्षेत्र का सबसे बड़ा संकट यही है। इस संकट को दूर करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है।

प्रत्येक देश की शिक्षा व्यवस्था में उस देश की जीवन दृष्टि का महत्त्व सबसे अधिक होता है। यह जीवन दृष्टि ही ज्ञान के क्षेत्र का मूल अधिष्ठान होती है। हमारे देश 'भारत' की पहचान एक आध्यात्मिक राष्ट्र की है। अतः हमारे यहाँ सभी विषयों का अधिष्ठान अध्यात्म रहा है। किन्तु विद्वानों और सामान्यजनों में अध्यात्म के बारे में बहुत अधिक भ्रम फैला हुआ है। इसलिए पहले अध्यात्म की संकल्पना को समझना आवश्यक है।

अध्यात्म को अज्ञान के कारण कुछ लोग संन्यास के साथ जोड़ते हैं तो कुछ लोग मठों और

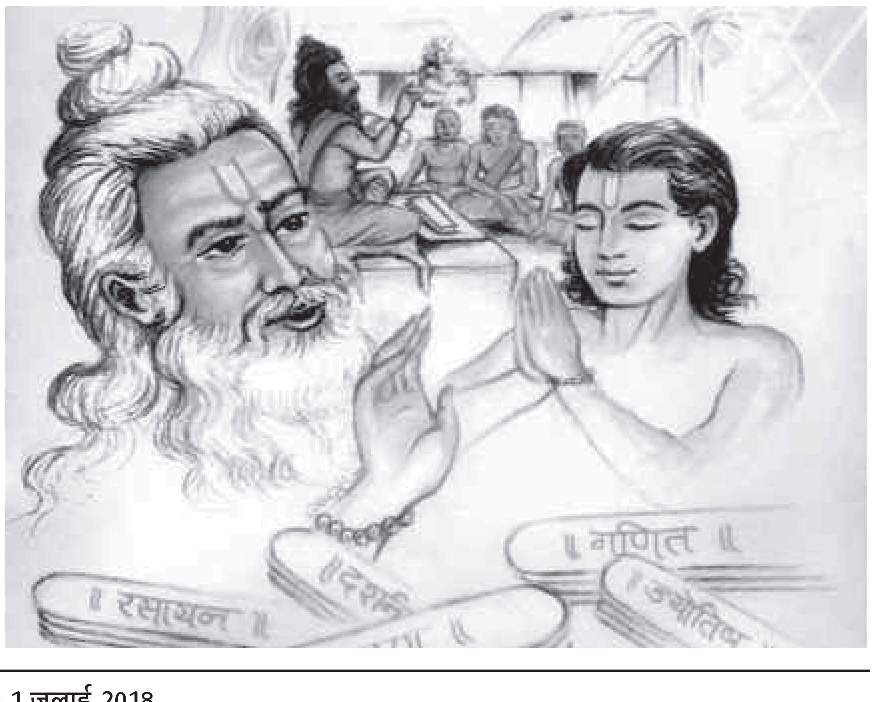

मन्दिरों के साथ। अनेक लोग धर्म को ही अध्यात्म समझते हैं और सम्प्रदाय को धर्म मानते हैं। कोई पूजा-अर्चना, कीर्तन-भजन, तीर्थ यात्रा, व्रत-उपवास, यज्ञादि को अध्यात्म समझते हैं। कोई योग को अध्यात्म समझते हैं तो कोई तंत्र-साधना को। कहने का अर्थ यह है कि लोग अध्यात्म को दैनन्दिन जीवन का अंग नहीं समझते, रोज-रोज की दुनिया से कोई अलग वस्तु ही समझते हैं। अथवा केवल साधु-संन्यासियों का विषय ही मानते हैं। ऐसी स्थिति में यदि हम शिक्षा के अधिष्ठान के रूप में अध्यात्म की बात करते हैं तो वह सामान्य जन ही नहीं बड़े-बड़े विद्वानों के भी गले नहीं उतरती।

वास्तविकता यह है कि अध्यात्म हमारे दैनन्दिन जीवन से अलग नहीं है, अलग हो भी नहीं सकता। विचित्रता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिकता की प्रशंसा तो करता है, उसे चाहता भी है। परन्तु जिसे वह चाहता है, उसे अध्यात्म नहीं कहता उसके लिए कुछ विचित्र कारणों से दूसरे ही शब्दों का प्रयोग करता है।

अध्यात्म का अर्थ – पहले हम अध्यात्म का अर्थ समझते हैं। अध्यात्म में मूल शब्द 'आत्म' है, आत्म के आगे 'अधि' उपसर्ग लगकर 'अध्यात्म' शब्द बना है। इस रूप में अध्यात्म का अर्थ होता है – आत्मतत्त्व को भावनाओं, विचारों, व्यवहार और व्यवस्थाओं के आधार के रूप में स्वीकार करना। आत्मतत्त्व को सामान्य लोग भगवान, ईश्वर या परमात्मा कहते हैं। वह परमात्मा सर्वज्ञ है, सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिमान है, कण-कण में विद्यमान है, उसने ही यह सारी सृष्टि बनाई है, ऐसा मानते हैं। किसी एकान्त स्थान में छिपकर कुछ भी करो, वह हमें देखता हैं, व्यक्ति के मन में क्या चल रहा है, वह सब जानता है, कौन कैसा है ? उसकी पूरी जानकारी उसके पास है। वह पापियों को, दुर्जनों को दण्ड देता है और सज्जनों की रक्षा करता है। उसके घर में देर है परन्तु अन्धेर नहीं है। लोक मानस में दृढ़ता से प्रतिष्ठित ये मान्यताएँ वास्तव में अध्यात्म का ही लोक भाषा में प्रकटीकरण है। लोक मानस में अध्यात्म की स्वीकृति और बौद्धिक जगत में अध्यात्म विषयक अज्ञान आज के अनेक संकटों का उद्‌गम स्थान है। बौद्धिक स्पष्टता के अभाव में लोक मानस अप्रतिष्ठित हो जाता है, धीरे-धीरे अव्यवस्थित और हेय भी हो जाता है। इसलिए बौद्धिक स्पष्टता आवश्यक है।

आत्मतत्त्व की अनुभूति – आत्मतत्त्व अनुभूति का क्षेत्र है। आत्मतत्त्व एक ऐसी संकल्पना है, जो सम्पूर्ण जगत के सभी व्यवहारों, घटनाओं, भावनाओं, व्यवस्थाओं को स्पष्ट करती है अर्थात् वह ऐसा क्या है, क्यों है व कैसे है ? का उत्तर देती है। यह जगत गतिशील और परिवर्तनशीन है। इस बात को स्वीकार तो सब करते हैं, परन्तु सब प्रकार के परिवर्तनों का आधार, सारी गतियों और परिवर्तनों को नियमन में रखने वाले तत्त्वों का भी आधार आत्मतत्त्व है, यह नहीं मानते। सभी परिवर्तनशील पदार्थों के पीछे एक सर्वथा अपरिवर्तनशील, इन्द्रियों एवं अन्तःकरण से गम्य पदार्थों के पीछे सर्वथा एक अगम्य, सभी कल्पनीय एवं चिन्तनीय पदार्थों के पीछे सर्वथा एक अकल्प्य और अचिन्त्य, सभी क्षरणीय और जर्जरित होने वाले पदार्थों के पीछे एक अक्षर और अजर, सभी मरणशील और नाशवान पदार्थों के पीछे एक अमर व अविनाशी, सभी आरम्भ और अन्त को प्राप्त होने वाले पदार्थों के पीछे एक अनादि और अनन्त, सभी द्वन्द्वात्मक, द्विविध, त्रिविध, अनेकविध और विविध पदार्थों के पीछे 'एकमेवाद्वितीय' तत्त्व की अनुभूति करना और उस अनुभूति को बुद्धिगम्य बनाना तथा

उसके आधार पर व्यावहारिक जीवन की रचना करना भारत के आर्षद्रष्टा ऋषियों के सामर्थ्य का निदर्शक है। मनुष्य को परमात्मा ने अपने ही प्रतिरूप में बनाया, इसका यह प्रमाण है। यह सामर्थ्य आत्मानुभूति का है। आत्मानुभूति ही आत्मबल है, जो बुद्धिबल, मनोबल, प्राणबल और देहबल के रूप में आवश्यकता के अनुसार प्रकट होता है और संसार के सारे कार्य-व्यापार को चलाता है। इस आत्मतत्त्व के अधिष्ठान के बिना सारा सामर्थ्य, सारा अस्तित्त्व अनाश्रित हो जाता है। इस आत्मतत्त्व को स्वीकारना ही जीवन को आध्यात्मिक बनाना है। शिक्षा में अध्यात्म के अधिष्ठान को स्वीकार करना ही शिक्षा को राष्ट्रीय बनाना है।

व्यावहारिक जीवन में जब हम आत्मतत्त्व का अधिष्ठान स्वीकार करते हैं, तब जीवन की जो शैली बनती है, हम उसे संस्कृति कहते हैं तथा जो व्यवस्था के नियम बनते हैं, उसे धर्म कहते हैं। चूँकि संस्कृति का सम्बन्ध सीधा-सीधा व्यवहार से ही है, इसलिए सारे विषयों को आध्यात्मिक कहने के स्थान पर यदि हम सांस्कृतिक कहें तब भी अर्थ एक ही है।

अधिष्ठान भौतिक नहीं, सांस्कृतिक हो - आज की शिक्षा जिस विज्ञान के अधिष्ठान पर प्रतिष्ठित है, वह तो भौतिक है। हमारे देश की जीवन रचना में भौतिक आयाम सांस्कृतिक आयाम का एक अंग है, अधिष्ठान नहीं। इसलिए हमारे यहाँ भौतिकता को स्वीकार किया गया है, उसे हेय नहीं माना है। तथापि संस्कृति के प्रकाश में ही उसे स्वीकारा गया है। भौतिकता को मुख्य न मानकर उसे संस्कृति का अंग मानने से भौतिकता भी अधिक समृद्ध, अधिक सार्थक तथा अधिक कल्याणकारी होती है। यह भारत की सहस्त्रों वर्षों की जीवन व्यवस्था ने सिद्ध कर दिया है।

अत: आवश्यक है कि हमें सभी विषयों के भौतिक नहीं अपितु सांस्कृतिक स्वरूप का विचार करना चाहिए। उदाहरण के लिए भूगोल विषय का शिक्षक अगर कक्षा में छात्रों से कहता है कि भारत का मानचित्र लेकर आओ तो वे जो मानचित्र लाते हैं, वह 'भारत का राजनैतिक मानचित्र' होता है। हमारे यहाँ राजकीय क्षेत्र सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन का एक अंग है, परन्तु आज हमने उसे मुख्य मान लिया है। यह तो गौण को मुख्य बना देने का कार्य हुआ। होना क्या चाहिए ? भारत का मानचित्र लाओ, ऐसा कहने पर 'सांस्कृतिक भारत' का मानचित्र लाना चाहिए। तब संस्कृति मुख्य और राजकीय क्षेत्र गौण, ऐसा अर्थ समझ में आयेगा। ठीक इसी प्रकार हमारा अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, वाणिज्यशास्त्र, तंत्रशास्त्र, विज्ञान आदि जितने भी विषयों की हम कल्पना कर सकते हैं, उन सब विषयों का स्वरूप सांस्कृतिक होना चाहिए, भौतिक नहीं। यह सांस्कृतिक अधिष्ठान केवल विषयों के स्वरूप तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए, वरन अध्ययन-अध्यापन की पद्धति, विद्यालयों की व्यवस्था, अध्यापक-अध्येता का सम्बन्ध, शिक्षा की अर्थ व्यवस्था आदि सभी पहलुओं को लागू होना चाहिए।

हमारे प्रमाण ग्रन्थ - सर्वप्रथम शिक्षा की विषयवस्तु को अध्यात्म के विचार पर अधिष्ठित करना होगा। यह सबसे पहले करने योग्य महत्त्वपूर्ण चरण है। इसके बिना सारे प्रयास बिना एक के शून्य जैसे निरर्थक हो जायेंगे। अत: हमें विशेष ध्यान देकर सभी विषयों की विषयवस्तु का सांस्कृतिक स्वरूप निर्धारित करना होगा और उनमें आन्तरिक सम्बन्ध भी स्थापित करना होगा। इसके लिए हमारे प्रमाणग्रन्थ हमारा मार्गदर्शन करेंगे। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कहते हैं -

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

अर्थात् - जो शास्त्रों में बताये हुए व्यवहार को छोड़कर मनमाना व्यवहार करता है, उसे न सिद्धि प्राप्त होती है, न सुख प्राप्त होता है और न ही मोक्ष प्राप्त होता है।

हमारे शास्त्र और क्या कहते हैं -

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।

शास्त्र कहते हैं, क्या करना और क्या नहीं करना ? इसका निश्चय करने में शास्त्र ही तेरे लिए प्रमाण हैं। तात्पर्य यह है कि हमें हर विषय के निरूपण में शास्त्र को ही प्रमाण मानना होगा। प्रमाण के लिए हमारे कौन-कौन से शास्त्र हैं ?

हमारे प्रमाण शास्त्र हैं - वेद और उपनिषद्, सूत्र ग्रन्थ, वेदांग, उपवेद तथा इतिहास के लिए पुराणादि ग्रन्थ। आर्षद्रष्टा ऋषि यथा-याज्ञवल्क्य, कौटिल्य, वेदव्यास, विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि हमारे लिए स्वत: प्रमाण हैं। इन मूल प्रमाणों के बाद भी व्यावहारिक सन्दर्भ का विचार तो हमें करना ही होगा। साथ ही साथ हमें युगानुकूल व देशानुकूल प्रस्तुति की भी चिन्ता करनी होगी।

विषयों का वरीयता क्रम – व्यक्तित्व विकास की हमारी संकल्पना व्यष्टि से परमेष्ठी की है। इस संकल्पना को ध्यान में रखते हुए हमें विषयों का वरीयता क्रम निश्चित करना होगा। यह क्रम कुछ ऐसा बनेगा –

परमेष्ठी से सम्बन्धित विषय प्रथम क्रम में आयेंगे। ये विषय हैं, अध्यात्मशास्त्र, धर्मशास्त्र, तत्त्वज्ञान और संस्कृति।

सृष्टि से सम्बन्धित विषय दूसरे क्रम पर आयेंगे। ये विषय हैं – भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, खगोल, भूगोल आदि। इनके साथ पर्यावरण एवं सृष्टि विज्ञान का समावेश होगा।

तीसरे क्रम में समष्टि से सम्बन्धित विषय आयेंगे। यह क्षेत्र सबसे व्यापक रहेगा। इनमें सभी सामाजिकशास्त्र यथा अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, वाणिज्यशास्त्र, उत्पादनशास्त्र (जिसमें सर्व प्रकार की कारीगरी, तंत्रज्ञान, कृषि आदि का समावेश है।) साथ में गृहशास्त्र का भी समावेश होगा, इनके उपविषय अनेक हो सकते हैं।

चौथे क्रम में व्यष्टि से सम्बन्धित विषय आयेंगे। इनमें भाषा, योग, शिक्षा, शरीर शास्त्र, आहारशास्त्र, मनोविज्ञान तत्त्वज्ञान, गणित, साहित्य, कला आदि अनेक विषयों का समावेश होगा।

व्यापकता के आधार पर हम विषयों की वरीयता निश्चित कर सकते हैं। वरीयता में जो विषय जितना ऊपर होता है, वह उतनी ही छोटी आयु से पढ़ाना चाहिए। पढ़ाते समय भी विषयों का परस्पर सम्बन्ध ध्यान में रखकर पढ़ाना चाहिए।

आधारभूत विषय – अध्यात्म, धर्म, संस्कृति एवं तत्त्वज्ञान – ये सब आधारभूत विषय हैं। गर्भावस्था से लेकर बड़ी आयु तक की शिक्षा में ये चारों विषय अनुस्यूत रहते हैं। इसलिए ये विषय अन्य विषयों के अधिष्ठान बनने चाहिए। तात्पर्य यह कि शेष सभी विषय इन विषयों के प्रकाश में ही पढ़ाये जाने चाहिए। ऐसा करने से ही प्रत्येक विषय सांस्कृतिक कहा जायेगा। स्वामी रामतीर्थ गणित विषय भी श्रीमद्भगवद् गीता के प्रकाश में समझाते थे, इसलिए उनकी कक्षा में मात्र विद्यार्थी ही नहीं बल्कि उनके साथी प्राध्यापक भी बैठते थे।

जब भाषा या साहित्य, भौतिकविज्ञान या तंत्रज्ञान अर्थशास्त्र या राजशास्त्र, इतिहास या संगणक इन सभी विषयों का स्वरूप अध्यात्म के अविरोधी रहेगा और इन्हें पूछे गये किसी भी प्रश्न का खुलासा अध्यात्म के सिद्धान्तों के अनुसार दिया जायेगा, उदाहरण के लिए उत्पादनशास्त्र में यंत्र आधारित उद्योग होने चाहिए या नहीं अथवा यंत्रों का कितना उपयोग करना चाहिए ? यह निश्चित करते समय धर्म और अध्यात्म क्या कहते हैं, पहले यह देखा जायेगा। इतना ही नहीं स्वतंत्र रूप से भी इनका अध्ययन आवश्यक है। चिन्तन के स्तर पर अध्यात्मशास्त्र, व्यवस्था के स्तर पर धर्मशास्त्र और व्यवहार के स्तर पर संस्कृति का अध्ययन शिशु अवस्था से उच्च शिक्षा तक सर्वत्र अनिवार्य होना चाहिए।

अध्यात्म सबका अंगी है – जैसे हमारा शरीर अंगी है और हाथ, पैर, आँख, नाक, कान, पेट, पीठ आदि उसके अंग हैं। ठीक वैसे ही अध्यात्म शास्त्र सभी विषयों का अंगी है और अन्य सभी विषय धर्म, संस्कृति, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, विज्ञान, तंत्रज्ञान आदि उसके अंग हैं। अध्यात्म की संकल्पना भारत की विशेषता है। इस संकल्पना के स्रोत 'आत्मतत्त्व' से समस्त ज्ञानधारा प्रवाहित हुई है। इसके आधार पर ही जीवनदृष्टि बनी है, इस रूप में भारतीय जीवनदृष्टि और आत्मतत्त्व की संकल्पना एक दूसरे में ओत-प्रोत हैं। आत्मतत्त्व अनुभूति का विषय है। अनुभूति भी आत्मतत्त्व के समान एक मात्र भारतीय विषय है। अनुभूति को बौद्धिक स्तर पर निरूपित करने के प्रयास से तत्त्वज्ञान का विषय बना है। हम अंग्रेजी शब्द फिलोसाफी का अनुवाद 'दर्शन' संज्ञा से करते हैं, जो ठीक नहीं है। फिलोसोफी के स्तर की संज्ञा तत्त्वज्ञान हो सकती है, दर्शन नहीं। आत्मतत्त्व की तरह दर्शन या अनुभूति का अंग्रेजी अनुवाद नहीं हो सकता। अतः पहले भारतीय संकल्पनाओं के अंग्रेजी अर्थ से मुक्त होना अनिवार्य है।

वैश्विकता का भारतीय अर्थ – अध्यात्म, धर्म, संस्कृति व तत्त्व ज्ञान पर आधुनिक वैश्विकता का साया पड़ा हुआ है। अतः वैश्विकता का भी भारतीय सांस्कृतिक अर्थ समझना होगा। वास्तव में भारत सदैव सांस्कृतिक वैश्विकता का पक्षधर एवं पुरस्कर्ता रहा है। अतः वैश्विकता के भारतीय अर्थ को प्रस्थापित कर इन विषयों को भी न्याय देना चाहिए।

संचार माध्यमों के कारण छोटे हुए विश्व में परस्पर विरोधी समुदायों का क्या होगा? ये दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करेंगे, उन्हें कैसा व्यवहार करना चाहिए ? इन प्रश्नों के उत्तर अध्यात्म के प्रकाश में खोजने होंगे। वर्तमान में विश्वसंस्कृति, विश्वधर्म, विश्व नागरिकता की बात की जाती है, यह क्या है? भारतीय अध्यात्म की संकल्पना के अनुसार इसका क्या तात्पर्य है, यह भी समझना होगा।

भारतीय संस्कृति सर्वसमावेशक – वास्तव में अध्यात्म ऐसा मूल विषय है, जिसकी हमने घोर उपेक्षा की है। पश्चिम ने तो इसे गलत समझा है। आज भी पाश्चात्य विद्वान हमारे शास्त्र ग्रन्थों का अर्थ प्रस्तुत करते हैं और उन्हें अधिकृत मनवाने का आग्रह करते हैं। हमारे विश्वविद्यालय के अध्ययन मंडल उन्हें अधिकृत मान भी लेते हैं। मैक्समूलर के समय से शुरू हुई यह परम्परा आज भी कायम है। हमें इससे मुक्त होने के लिए मूल ग्रन्थों का अध्ययन करने की आवश्यकता है।

भारत की पहचान आध्यात्मिक देश की है। भारतीय समाज धर्मनिष्ठ है। भारत की संस्कृति सर्वसमावेशक है, इस बात को भावनात्मक दृष्टि के स्थान पर ज्ञानात्मक दृष्टि से समझना ही इस आलेख का मूल सार है।❑

(पूर्व मंत्री – विद्या भारती, जोधपुर प्रान्त)

संस्कार आधारित शिक्षा : आज की आवश्यकता

❑ डॉ. बुद्धमति यादव

शिक्षा में संस्कारों और संस्कारों की शिक्षा को महत्त्व ना मिलने के कारण आज की शिक्षा योग्य नागरिकों का निर्माण करने में अक्षम नजर आती है। विवेकानन्द जी कहते हैं कि ''क्या वह शिक्षा, शिक्षा कहलाने के योग्य है जो सामान्य जनसमूह को जीवन के संघर्ष के लिए अपने आपको तैयार करने में सहायता नहीं देती है और उनमें शेर का सा साहस उत्पन्न नहीं करती है?'' विवेकानन्द जी का मानना था कि शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति को जीवन संघर्ष के लिए तैयार करे। केवल पुस्तकीय ज्ञान से काम नहीं चलेगा, हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिससे व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

संस्कार आधारित शिक्षा को समझने के लिए शिक्षा और संस्कार को समझना आवश्यक है। शिक्षा मानव-निर्माण की प्रक्रिया है। शिक्षा के द्वारा मानव अपनी जन्मजात शक्तियों का विकास करके व्यवहार में परिवर्तन ला सकता है तथा स्वयं को सभ्य और सुसंस्कृत तथा योग्य नागरिक बना सकता है। मानव जीवन और मानव विकास में शिक्षा के महत्त्व को इस प्रकार समझा जा सकता है -''जिस प्रकार पौधों का विकास खेती की अच्छी जुताई से होता है, उसी प्रकार मानव का विकास शिक्षा द्वारा होता है।'' अच्छी शिक्षा वही है जो व्यक्ति को ज्ञान-प्राप्ति, कौशल अर्जन के साथ-साथ सांस्कृतिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने की क्षमता प्रदान करती है। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक का बौद्धिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास होता है, जो उसके जीवन को सफल बनाती है। उसके व्यवहार में परिवर्तन और परिवर्द्धन करती है, जो व्यक्ति, समाज, देश तथा विश्व के कल्याण के लिए आवश्यक है।

संस्कार वे माध्यम हैं जिनके द्वारा व्यक्तियों को अनुशासित एवं दीक्षित किया जाता है। संस्कारों के द्वारा व्यक्तियों को समाज के मूल्यों, प्रतिमानों और आदर्शों से परिचित कराया जाता है और उनके अनुरूप व्यवहार करने की दृष्टि से ही इन्हें संस्कारित किया जाता है। संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति के सम्मुख ऐसा वातावरण प्रस्तुत किया जाता है, जिससे वह अपनी संस्कृति से सम्बन्धित मूलभूत बातों को समझ सके और उन्हीं के अनुरूप अपने जीवन को ढाल सके।

लेकिन वर्तमान समय में आधुनिक शिक्षा, पश्चिमीकरण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं तार्किकता के विकास, औद्योगिकरण तथा नगरीकरण आदि के कारण भारतीय संस्कार प्रभावहीन होते जा रहे हैं। आज संस्कारों की पूर्ति केवल रूढ़िवादिता या लकीर पीटना मात्र रह गई है।

इन सबके बावजूद संस्कारों के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि संस्कार मानव-जीवन के परिष्कार और शुद्धि में सहायता पहुँचाते हैं। व्यक्तित्व के विकास को सुविधाजनक बनाकर, देह को पवित्रता और महत्त्व प्रदान करते हैं। समस्त भौतिक, आध्यात्मिक महत्त्वाकांक्षाओं को गति देते हैं तथा अन्त में उसे जटिलताओं और समस्याओं के संसार से सानन्द मुक्ति के लिए प्रस्तुत करते हैं। संस्कारों से व्यक्ति को चरित्रगत दृढ़ता प्राप्त होती है।

इतना ही नहीं संस्कारों से सामाजिक महत्त्व की समस्याओं के समाधान में भी सहायता मिलती है। गर्भाधान और पुंसवन संस्कार द्वारा गर्भिणी की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है, उसकी जैविकीय सुविधाओं का पूरा ध्यान रखा जाता है। उपनयन संस्कार द्वारा बालक को संयमी और अनुशासित जीवन व्यतीत करने की ओर अग्रसर किया जाता है।

व्यक्ति और समाज की अपेक्षाओं के बीच संतुलन बनाए रखने में भी संस्कार सहयोग करते हैं। संस्कारों द्वारा व्यक्ति का समाजीकरण इस प्रकार से होता है कि वह पग-पग पर अपने सामाजिक दायित्वों से परिचित होता जाता है। वह यह जान लेता है कि उससे समाज की क्या अपेक्षाएँ हैं और उन अपेक्षाओं के अनुरूप बनने की दृष्टि से संस्कार उसके सम्मुख उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करते हैं जैसे - विवाह संस्कार के द्वारा व्यक्ति न केवल परिवारजनों बल्कि सम्पूर्ण समाज के प्रति अपने दायित्वों से परिचित होता है।

संस्कार नैतिक गुणों के विकास तथा संस्कृति की रक्षा में भी सहायक होते हैं। संस्कारों द्वारा व्यक्ति में दया, क्षमा, पवित्रता, नि:स्वार्थ भाव, समर्पण आदि का विकास होता है। संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति समाज की सांस्कृतिक परम्पराओं के आदर्श प्रतिमानों से परिचित होता है। वह इन्हीं के अनुरूप व्यवहार करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार सांस्कृतिक परम्पराएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती हैं।

संस्कारों का आध्यात्मिक महत्त्व भी कम नहीं है। ये संस्कार व्यक्ति को यह सोचने को प्रेरित करते रहते हैं कि जीवन को प्रभावित करने वाली कोई अदृश्य शक्ति अवश्य है और उसी को सन्तुष्ट करने की दृष्टि से ही विभिन्न संस्कारों से सम्बंधित अनेक अनुष्ठान किये जाते हैं। संस्कार ही वह मार्ग है

जिससे क्रियाशील सांसारिक जीवन का सम्बन्ध आध्यात्मिक तथ्यों के साथ स्थापित किया जाता है।

संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति मन में उठने वाले भावों और विचारों को प्रकट कर पाता है। मानसिक तनाव, कुंठाएँ समाप्त हो जाती हैं और व्यक्तित्व का समुचित विकास हो पाता है जैसे बाल्यकाल में नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुण्डन तथा कर्ण-वेधन आदि संस्कारों के समय हर्ष और आनन्द का अनुभव, विवाह संस्कार से काम वासना की पूर्ति, अन्त्येष्टि संस्कार से शोक और दु:ख को प्रकट किया जाता है। मानसिक संतुलन के लिए इन सभी रूपों में आत्माभिव्यक्ति आवश्यक है। इस प्रकार भारतीय जीवन को व्यवस्थित बनाए रखने में संस्कारों का बड़ा योगदान है।

शिक्षा में संस्कारों और संस्कारों की शिक्षा को महत्त्व ना मिलने के कारण आज की शिक्षा योग्य नागरिकों का निर्माण करने में अक्षम नजर आती है। विवेकानन्द जी कहते हैं कि ''क्या वह शिक्षा, शिक्षा कहलाने के योग्य है जो सामान्य जनसमूह को जीवन के संघर्ष के लिए अपने आपको तैयार करने में सहायता नहीं देती है और उनमें शेर का सा साहस उत्पन्न नहीं करती है?'' विवेकानन्द जी का मानना था कि शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति को जीवन संघर्ष के लिए तैयार करे। केवल पुस्तकीय ज्ञान से काम नहीं चलेगा, हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिससे व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

वर्तमान समय में मूल्यहीनता की स्थिति झूठ बोलना, धोखा देना, रिश्वत लेना, गलत कार्य करना आदि प्रतिष्ठा के सूचक बन गये हैं, ऐसी स्थिति में सुख, शांति और संतोष मानव जीवन से दूर होते जा रहे हैं। अत: शिक्षा द्वारा मूल्यहीनता की स्थिति को दूर कर छात्रों में नैतिकता का समावेश करके चरित्रवान व्यक्ति का निर्माण करने की आवश्यकता है। विवेकानन्द जी का मानना है कि शिक्षा ऐसी हो, जो मनुष्य निर्माण से राष्ट्र निर्माण कर सकने में समर्थ हो। ऐसी शिक्षा जो मनुष्य निर्माण की प्रक्रिया में उसके दोषों का परिमार्जन करे। सद्‌गुणों, सकारात्मक मूल्यों का समावेश करे, उसे भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्य दे।

मैकालयी शिक्षा ये सब करने में असमर्थ है, क्योंकि मैकालयी शिक्षा का उद्देश्य बाबुओं का उत्पादन करना तथा भारतीयों के विचारों और बुद्धि को यूरोपीय रंग में रंगना था, जिसमें वे पूर्णत: सफल भी रहे। मैकालयी शिक्षा के भारत में प्रभाव को स्वयं मैकाले एक पत्र के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहता है- ''हमारे इंग्लिश स्कूल आश्चर्यजनक ढँग से पनपते चले जा रहे हैं। हिन्दूओं पर इस शिक्षा का असर बहुत ही जबरदस्त और अनोखा ही हुआ है। जो भी हिन्दू एक बार अंग्रेजी शिक्षा पा लेता है, उसका अपने धर्म से लगाव खत्म हो जाता है। .... यह मेरा विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा योजनाओं को अबाध रूप से निरन्तर चालू रखा गया तो आज से 18 वर्ष बाद बंगाल की प्रतिष्ठित जातियों में एक भी हिन्दू नहीं रह पाएगा और यह काम बिना कोई मतान्तरण का प्रयत्न किए और धार्मिक स्वतंत्रता में थोड़ा भी हस्तक्षेप किए बिना ज्ञान और चिन्तन-मनन की प्राकृतिक संक्रिया की सहायता से ही पूरा हो जाएगा। भविष्य की इस आशा से मेरा मन नाच-नाच उठता है।''

स्थितियाँ बदलीं, हम आजाद हुए लेकिन 70 वर्ष बीत जाने के बाद भी मैकालयी शिक्षा जस की तस विद्यमान है। भारतीय परिवेश और संस्कृति को जितना आघात मैकालयी शिक्षा ने पहुँचाया है, उतना किसी अन्य ने नहीं। महात्मा गाँधी के शब्दों में ''अंग्रेज जब भारत में आए तब उन्होंने यहाँ की स्थिति को यथावत स्वीकार करने के स्थान पर उसका उन्मूलन करना शुरू किया। उन्होंने मिट्टी कुरेदी, जड़ों को कुरेद कर बाहर निकाला और फिर उन्हें खुला ही छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि शिक्षा का वह रमणीय वृक्ष नष्ट हो गया।'' फलत: हम अपनी संस्कृति को विस्मृत करने लगे। स्व का विस्मरण होने पर उत्पन्न शून्यता, आत्मविश्वास रहित, परमुखापेक्षी पीढ़ी तैयार करने लगी। जो भारत शिक्षा के क्षेत्र में 'विश्वगुरु' के पद पर सुशोभित था, उस भारत की शिक्षा के क्षेत्र में जो दुर्दशा हुई, वह सर्वविदित है। आज गुणात्मक शिक्षा की दृष्टि से भारत का कोई भी विश्वविद्यालय वरीयता सूची में अपना स्थान नहीं बना पाया है। वजह स्पष्ट है, जो शिक्षा संस्कार विहीन है, वो शिक्षा ना तो मनुष्य निर्माण कर सकती है और ना ही राष्ट्र निर्माण।

अत: वर्तमान सन्दर्भों में शिक्षा के क्षेत्र में भारत को पुन: सम्मान और गौरवपूर्ण स्थान दिलाने, 'विश्वगुरु' के योग्य बनाने हेतु शिक्षा पद्धति में परिवर्तन की महती आवश्यकता है। यह परिवर्तन संस्कार आधारित भारतीय शिक्षा पद्धति से ही सम्भव है। भारत के विलुप्त 'रमणीय शिक्षा वृक्ष' का पुन: रोपण करने के लिए संस्कार आधारित शिक्षा की महती आवश्यकता है, उसी के द्वारा मनुष्य निर्माण और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया सम्भव हो सकती है। संस्कारों में निहित नैतिक-शिक्षा अथवा आध्यात्मिकता ही राष्ट्रीय जीवन के लिए रीढ़ की हड्डी के समान महत्त्वपूर्ण है। यदि भारत अपनी आध्यात्मिकता का परित्याग कर देगा तो उसका विनाश हो जाएगा, ऐसे संकेत देते हुए विवेकानंदजी ने कहा था- ''कि यदि तुमने अपनी आध्यात्मिकता का परित्याग करके पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के पीछे दौड़ना शुरू कर दिया तो तीन पीढ़ियों में तुम्हारी जाति (हिन्दू) नष्ट हो जाएगी, क्योंकि राष्ट्र के रीढ़ की हड्डी टूट जाएगी, जिसकी नींव पर राष्ट्रीय भवन का निर्माण किया गया है, वह हिल उठेगी और परिणाम होगा सर्वनाश।''

अत: आवश्यकता है अपनी संस्कृति को पहचानने की, अपने अतीत के प्रति गौरव का अनुभव करने की, भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न करने की, युवाओं में भारत के प्रति प्रेम, राष्ट्रभक्ति, विश्वास, आत्मनिर्भरता तथा स्वाभिमान का संचार करने की, विशृंखलित और पराभूत राष्ट्र के पुनर्निर्माण का पथ प्रशस्त करने की। इन सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने में संस्कार आधारित शिक्षा ही सक्षम है और वही आज की महती आवश्यकता है। ❑

(एसोसिएट प्रोफेसर, जी.डी. कॉलेज, अलवर)

संस्कार व शिक्षा

मनुष्य को संस्कारित करने के लिए संस्कार विधान की व्यवस्था भारतीय संस्कृति में की गई है जिससे उसे परिष्कारित कर उससे मानवोचित कार्य लिया जा सकता है। ये संस्कार मनुष्य के अपने विकास और सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक माने गये हैं। सुदीर्घ अनुभव के बाद संस्कार जो मानव के लिए आवश्यक हैं का विवरण, स्मृतियों आदि में किया गया है जिनकी संख्या 12 से 40 तक है। मनुस्मृति में तेरह संस्कारों का तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में केशान्त को छोड़कर बारह संस्कारों का उल्लेख है। बाद की स्मृतियों में सोलह संस्कारों का उल्लेख मिलता है। संस्कारों को शरीर की शुद्धि, सामाजिक विकास एवं पवित्रता की प्राप्ति का साधन माना गया है। ये संस्कार मात्र प्रथा या रीति-रिवाज नहीं अपितु वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के सशक्त साधन हैं।

❑ **डॉ. सुमन बाला**

भारतीय समाज विश्व के प्राचीनतम समाजों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हजारों वर्ष पुराने इस समाज के अपने आदर्श, मानदण्ड, रीतियाँ एवं परम्पराएँ हैं जो इसे अन्य समाजों से अलग पहचान दिलाते हैं। भारतीय समाज के ये आदर्श, मानदण्ड, रीतियाँ एवं परम्पराएँ जो कि बहुत लम्बी अवधि में विकसित हुए हैं और ये भारतीय संस्कृति के प्राण माने जाते हैं। भारतीय संस्कृति के ये आदर्श और मानदण्ड शाश्वत और निरपेक्ष हैं, अत: ये मानव मात्र के लिए जीवन के लक्ष्य कहे जा सकते हैं। भारतीय संस्कृति के इन लक्ष्यों में सम्मिलित सर्वोच्च मानवीय मूल्य चाहे वह मोक्ष प्राप्ति हो या विश्वबंधुत्व की भावना हो, भारतीयों के सुदीर्घ अनुभव एवं खोज के आधार पर प्रतिपादित सत्य है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति में समाज व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था और संस्कार विधान सहायक है जिसका वर्णन भारतीय संस्कृति में विस्तृत रूप से किया गया है। हमारी संस्कृति में जीवन का चरम लक्ष्य 'मोक्ष' रहा है जिसके पीछे मनुष्य शरीर की नश्वरता व आत्मा की अजरता-अमरता की दार्शनिक सोच रही है। आत्मा को परमात्म तत्त्व का अंश मानकर उसी में लय होने के लिए उसे (मनुष्य) राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से बन्धन मुक्त होना होगा। इस अवस्था की प्राप्ति के लिए वह (मनुष्य) कहता है-

असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमय,

बन्धन मुक्त होने पर उसके लिए समस्त विश्व कुटुम्ब हो जाता है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के लिए सब के सुखी होने और सभी के कल्याणकारी विचारों की कामना इन शब्दों में करता है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।
संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।।

इस प्रकार हमारी संस्कृति में सर्वोच्च आदर्श मानव मात्र के कल्याण की भावना रही है। मानव कल्याण की भावना मनुष्य में विकसित करने के लिए उसे संस्कारित करना होगा। मनुष्य को संस्कारित करने के लिए शिक्षा किस प्रकार की दी जानी चाहिए और ये संस्कार कौन-कौन से बताये गये हैं, को जानना आवश्यक है। संस्कार शब्द के अर्थ को जानने के लिए उसके शाब्दिक अर्थ को जानना आवश्यक हैं। संस्कार शब्द में मूल धातु 'कृ' है जिसका अर्थ है सम्यक् कार्य

करना, संवारना, शुद्ध करना। अच्छी तरह कार्य करने वाले को सुसंस्कारित या सुसंस्कृत कहा जाता है। अच्छी तरह का मानदण्ड क्या है? ये मानदण्ड किसने निर्धारित किये हैं? मनुष्य सामाजिक प्राणी है और भारत को जानने के लिए हमें प्राचीन काल में विकसित हुई सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया को जानना होगा। हमारे पूर्वजों ने सामूहिक रहने के लिए विभिन्न समूहों की स्थापना की। इन समूहों में परस्पर एवं विभिन्न समूहों में परस्पर व्यवहार के आदर्श और रीतियाँ तय की गई। इनके अनुरूप जो कार्य करता है और उसे अच्छी तरह से कार्य करने वाला या संस्कारवान (संस्कारित) कहते हैं और ये आदर्श मानदण्ड एवं रीतियाँ उस समाज (समूह) की संस्कृति बन गई। ये आदर्श व्यवहार व्यक्तिनिष्ठ न होकर समूहनिष्ठ हैं और इनका निर्धारण दीर्घ अवधि में धीरे-धीरे अनुभव के आधार पर हुआ। इसलिए आदर्श शाश्वत और निरपेक्ष है।

मनुष्य को संस्कारित करने के लिए संस्कार विधान की व्यवस्था भारतीय संस्कृति में की गई है जिससे उसे परिष्कारित कर उससे मानवोचित कार्य लिया जा सकता है। ये संस्कार मनुष्य के अपने विकास और सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक माने गये हैं। सुदीर्घ अनुभव के बाद संस्कार जो मानव के लिए आवश्यक हैं का विवरण, स्मृतियों आदि में किया गया है जिनकी संख्या 12 से 40 तक है। मनुस्मृति में तेरह संस्कारों का तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में केशान्त को छोड़कर बारह संस्कारों का उल्लेख है। बाद की स्मृतियों में सोलह संस्कारों का उल्लेख मिलता है। संस्कारों को शरीर की शुद्धि, सामाजिक विकास एवं पवित्रता की प्राप्ति का साधन माना गया है। ये संस्कार मात्र प्रथा या रीति-रिवाज नहीं अपितु वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के सशक्त साधन हैं। ये मानव जीवन को सुसंस्कृत बनाने, उसमें नैतिकता लाने और उसके आत्मिक विकास के साधन भी है। इसलिए इन संस्कारों को

वर्तमान में मानव को शिक्षित करने की प्रक्रिया के एक भाग के रूप में लिया जाना चाहिए।

भारतीय संस्कृति में ब्रह्मचर्य को साधना, तपस्या और गुणार्जन की अवस्था माना गया है। व्यक्ति पहले लौकिक जीवन-निर्वहन एवं पारलौकिक की सम्प्राप्ति के लिए आवश्यक गुणों का व्यवहार में समावेश करता है और इस आधारभूत आश्रम को ब्रह्मचर्य आश्रम कहा गया है जिस पर खड़ा होकर वह गृहस्थ का संचालन करता है और फिर शनैः-शनैः अपने चरम लक्ष्य मोक्ष की ओर वानप्रस्थाश्रम के माध्यम से बढ़ता है। ज्ञानार्जन और गुणार्जन की अवस्था में ब्रह्मचर्य का पच्चीस वर्षीय क्रम है। जिसमें अंत्येष्टि संस्कार को छोड़कर अधिकतम संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं। संस्कारों को मानव जीवन की अवस्थानुसार इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है-

(अ) जन्म पूर्व के संस्कार - हमारी संस्कृति में जन्म पूर्व की अवस्था को भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है और यह समय मानव व्यक्तित्व के निर्माण का आधार मानकर इस अवस्था के तीन संस्कार आवश्यक माने गये हैं।

- **गर्भाधान संस्कार** - गर्भाधान हेतु काल, नक्षत्र, राशियों आदि का विशद विवेचन करते हुए इसे बीज-वपन संस्कार माना गया है। बीज-वपन सम्यक् प्रकारेण हो तो उसमें विकसित होने वाला पौधा भी स्वस्थ होगा, इसके लिए गर्भाधान संस्कार की आवश्यकता है।
- **पुंसवन संस्कार** - गर्भधारण के दूसरे या तीसरे मास में जब गर्भस्थ शिशु के लिंग धारण के समय गर्भवती स्त्री के दाहिने नासिका रन्ध्र में वट वृक्ष-रस गर्भपात-निरोध एवं स्वस्थ सन्तति के जन्म के उद्देश्य से छोड़कर पुंसवन संस्कार सम्पन्न किया जाता है।
- **सीमन्तोन्नयन संस्कार** - यह संस्कार गर्भ के चौथे, छठे महीने गर्भवती को भयमुक्त एवं प्रसन्नचित्त बनाने के उद्देश्य से किया जाने वाला संस्कार है। इसके लिए गर्भवती स्त्री को श्रम, दिवाशयन, रात्रिजागरण, भय, सवारी पर यात्रा आदि से बचने की आवश्यकता पर बल दिया जाता है।

(ब) शैशवावस्था के संस्कार - जन्म के पश्चात् की शिशु अवस्था के लिए छः संस्कार हमारी संस्कृति में आवश्यक कहे गये हैं -

- **जातकर्म संस्कार** – बालक के जन्म लेते ही किया जाने वाला संस्कार जिसमें उसकी जिह्वा पर मधु एवं घृत से ओम (ॐ) लिखा जाने का तथा कान में वेदोअसि कहा जाने का विधान है। यह संस्कार नाभि बन्धन के पूर्व ही सम्पन्न किया जाता है।
- **नामकरण संस्कार** – बालक के जन्म के 10वें, 11वें अथवा 12वें दिन बालक का नाम रखना इस संस्कार के अन्तर्गत विधि–विधानपूर्वक किया जाता है।
- **निष्क्रमण संस्कार** – शिशु को चौथे मास में घर से बाहर लाने के लिए किया जाने वाला संस्कार है जिसमें सूर्य, कुलदेवता के दर्शन एवं स्तुति का विधान है। यह बालक के लिए प्रकृति अवलोकन का प्रथम सोपान है।
- **अन्नप्राशन संस्कार** – शिशु को छठे महीने में ठोस भोजन देने का संस्कार जिसमें खीर खिलाने का विधान है, विधिपूर्वक सम्पन्न किया जाता है।
- **चूड़ाकर्म संस्कार** – यह बालक के प्रथम वर्ष के अन्त तथा तीसरे वर्ष की समाप्ति से पूर्व किया जाने वाला संस्कार है जिसमें उसके सिर के सभी बालों को मुंडवाकर चोटी को रखा जाता है। बालों को आटे के पिण्ड अथवा गोबर के पिण्ड के साथ बाहर फेंक दिया जाता है तथा शिखा रखी जाती है।
- **कर्णवेध संस्कार** – छठे से बारहवें महीने में बालक का कर्णवेधन संस्कार स्वास्थ्य–रक्षा एवं सौन्दर्य वृद्धि के उद्देश्य से अलंकार धारण हेतु किया जाता है। सुश्रुत संहिता आदि आयुर्वेदीय ग्रंथों में स्वास्थ्य हेतु इसे किये जाने का वर्णन मिलता है।

(स) बाल्यावस्था के संस्कार – शैशवावस्था के पश्चात् बाल्यावस्था के तीन संस्कार इस प्रकार से है–

- **विद्यारम्भ संस्कार** – बाल्यावस्था के प्रारम्भ में पाँच वर्ष की अवस्था में गणेश–सरस्वती के पूजन के साथ गुरु के सम्मुख बैठकर बालक को अक्षर–वाचन कर विद्यारम्भ करना इस संस्कार के अन्तर्गत किया जाता है।
- **उपनयन संस्कार** – इस संस्कार के अन्तर्गत गुरु द्वारा दीक्षा देना है और प्रकाश मार्ग की ओर प्रवर्तन करना है। गुरु द्वारा गायत्री मंत्र देना और यज्ञोपवीत धारण करना इस संस्कार में आगे चलकर सम्मिलित किया गया।
- **वेदारम्भ संस्कार** – यह संस्कार उपनयन संस्कार के एकाध वर्ष बाद सम्पन्न होता है जिसमें शिक्षा आरम्भ के बाद संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कर वेद–अध्ययन का शुभारम्भ किया जाता था।

(द) किशोरावस्था एवं युवावस्था के संस्कार – बालक के इस अवस्था के तीन संस्कार आवश्यक माने गये हैं।

- **केशान्त या गोदान संस्कार** – 16 वर्ष की अवस्था में ब्रह्मचारी की मूछों का क्षौर कर्म करना और गुरु को गाय का दान इस संस्कार में माने गये हैं।
- **समावर्तन संस्कार** – शिक्षा पूर्ण कर जब ब्रह्मचारी अपने घर वापस जाता है तब दीक्षान्त या समावर्तन संस्कार होता था जिसमें उसे पवित्र जल से स्नानादि करवाकर गुरु द्वारा दीक्षा दी जाती थी।
- **विवाह संस्कार** – विवाह को मानव के लिए ऋणों से उऋण होने के लिए आवश्यक माना गया है जिसमें उसके गृहस्थाश्रम का आरम्भ माना गया है।
- **अंत्येष्टि संस्कार** – यह जीवन का अन्तिम संस्कार है, जब व्यक्ति का लौकिक जीवन समाप्त हो जाता है। यह व्यक्ति के पारलौकिक जीवन में सुख एवं कल्याण की प्राप्ति हेतु आवश्यक माना जाता है।

इस प्रकार हमारे देश में व्यक्ति के सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास, उसके व्यवहार में सामाजिक आदर्शों के समावेशन हेतु संस्कार रूपी सुक्रियाएँ आवश्यक मानी गयी हैं। इन संस्कारों का सम्बन्ध मानव विकास द्वारा समाज और विश्वकल्याण से है। ये संस्कार जन्मपूर्व से युवावस्था तक की ब्रह्मचार्य अवस्था के लिए माने गये हैं क्योंकि यह अवस्था मानव–निर्माण की अवस्था है। अतः भारतीय संस्कार पद्धति को मानव निर्माण हेतु की जाने वाली क्रियाएँ अथवा शिक्षा कहा जाना चाहिए जो मानव को सुसंस्कारित कर विश्वकल्याण के लिए तैयार करती हैं। ❑

(व्याख्याता, हरिभाऊ उपाध्याय महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, हटूण्डी, अजमेर)

जीवन निर्माण की शिक्षा और संस्कार

❑ शिवशरण कौशिक

जीवन को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का अभ्यास भी प्रमुख संस्कारों में से एक है। जीवन की जड़ता को तोड़कर पुरुषार्थ से, ऊर्जा से, सम्यक चेतना से जीवन को देखने, समझने और जीने की कला संस्कार ही तो है। तर्क तथा अध्यात्म के सम्मिलन से एक व्यावहारिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है जिससे हमारी तात्कालिक तथा भविष्य की समस्याओं का समाधान तो मिलता ही है साथ ही संपूर्ण जीवन सार्थक भी होता है। बाकी जन्म से मृत्यु पर्यन्त किये जाने वाले सोलह संस्कारों का सामाजिक महत्त्व हो सकता है, परन्तु जीवन की सफलता व सार्थकता में उनकी विशेष भूमिका नहीं होती। ये निश्चित तिथि में निश्चित विधि से किये जाने वाले आरंभिक आचरण तो हो सकते हैं किन्तु उन उद्देश्यों की प्राप्ति पुरुषार्थ से ही की जा सकती है।

भारतीय जीवन पद्धति में विद्या की भूमिका चिरकाल से ही विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण रही है। किसी भी व्यक्ति के जीवन में उसकी चित्तवृत्तियों, दैनिक आदतों तथा व्यवहार में जो उच्चता की ओर उठने के लिए परिवर्तन होते हैं वे विद्या के ही कारण होते हैं। आधुनिक युग के आरंभ से पूर्व तक हमारे देश में विद्या को शिक्षा का पर्याय इसलिए माना जाता रहा था क्योंकि विद्या ग्रहण की जाती थी जो ग्राह्यता पर निर्भर करती है तथा शिक्षा प्राप्त की जाती है। अब विद्या का स्थान शिक्षा ने ले लिया है। शिक्षा भी यदि विद्या के ही समान शिक्षार्थी के मन, बुद्धि तथा हृदय का वैसा ही परिमार्जन तथा परिष्कार करती है तो विद्या और शिक्षा का अंतर समाप्त हो जाता है।

बदलते परिवेश के कारण आज हमारी शिक्षा में सूचनाओं की अधिकता है क्योंकि पाठ्यक्रमों तथा परीक्षा प्रणाली का वर्तमान स्वरूप पूरी तरह वस्तुनिष्ठ हो चुका है, विषयनिष्ठता की भूमिका कमतर होने लगी है। इसमें पूरा संदेह है कि हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति बालक व युवाओं की अन्तर्निहित क्षमताओं का पूर्णता में विकास कर पा रही है तथा उच्च नैतिक आदर्शों की स्थापना कर पा रही है। क्या हमारी वर्तमान शिक्षा आज की युवा पीढ़ी को वह दिशा दे पा रही है जिससे हमारा देश एक समृद्ध, संपन्न, स्वस्थ और विराट मानवता का पक्षधर बन सके? क्या हमारे आज के शिक्षित वर्ग का व्यवहार ऐसा है जो जन साधारण के लिए 'आदर्श' बन सके तथा उसके समक्ष उदात्त जीवन-दृष्टि प्रस्तुत कर सके? ऐसे ही कुछ प्रश्न आज की शिक्षा व्यवस्था को लेकर उद्वेलित करते हैं।

शिक्षा संस्कारवान बनाती है, यह सर्वविदित भी है तथा सर्वथा सत्य भी। इसका बहुत बड़ा कारण है हमारी आध्यात्मिक सार्वलौकिकता। आज शिक्षा के माध्यम से विस्तार पा रही भौतिक सम्पन्नता की मानसिकता के स्थान पर अध्यात्म और विज्ञान के सम्मिलित- संतुलन से विवेकशील जीवन निर्माण की आवश्यकता है और यही शिक्षा

से भी अपेक्षा है।

वस्तुत: शिक्षा ही व्यक्ति के जीवन में वह चेतना जगाती है जिससे वह रूढ़िवादिता से निकलकर अपनी आभ्यंतरिक शक्तियों को गतिशील तथा ऊर्जावान् बनाता है। सामान्यत: 'संस्कार' शब्द का अर्थ व्यक्ति की अच्छी अभिरुचियों तथा शिष्ट व्यवहार से जोड़ा जाता है। यही नहीं इनमें निरंतर उत्कृष्टता तथा परिमार्जन की प्रबल संभावना भी बने रहना आवश्यक है।

आज हमारे शिक्षक 'शिक्षा-कर्मी' से 'शिक्षा-योगी' बनेंगे तो निस्संदेह शिक्षा से ही संस्कारों की पुनर्स्थापना की जा सकती है। किसी भी बालक के समक्ष जन्मोपरांत अपनी भावनाएँ, विचार तथा इच्छाएँ दूसरे तक पहुँचाने में सर्वप्रथम भाषा ही उचित माध्यम होती है। कालांतर में शिक्षा के ही माध्यम से व्यक्ति को भाषा-संस्कार प्राप्त होता है। भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति के विभिन्न कौशल विकसित हुए हैं।

अभिव्यक्ति और भाषा में अन्योन्याश्रित संबंध होता है, जैसी भाषा होगी वैसी ही अभिव्यक्ति होगी या फिर जिस प्रकार की अभिव्यक्ति करनी है, करने वाला उसके अनुकूल भाषा व शब्द की तलाश कर ही लेता है।

एक शिक्षित व्यक्ति तुलनात्मक रूप से एक कम पढ़े लिखे या निरक्षर व्यक्ति से अधिक कर्तव्यपरायण होना चाहिए। यदि उस पर शिक्षा का प्रभाव नहीं पड़ता तो इससे तो शिक्षा के मूल उद्देश्यों की पूर्ति करने की अक्षमता का ही प्रमाण मिलता है। दरअसल, सद्व्यवहार, कर्मशीलता, श्रमनिष्ठता, वरिष्ठजनों के प्रति समादर भाव, अभिरुचियों का परिष्कार, हृदय का परिष्कार जैसे मानवीय गुणों का आदर्श रूप भारतीय संयुक्त परिवारों में स्वत: ही हो जाता था। आपस में मिलकर रहना, आत्मीयता का असल अर्थ समझना, त्याग और सहिष्णुता को अपनाना तब परिवार के हर सदस्य के लिए सहज तथा स्वाभाविक होता था। और यह सब बिना किसी नियोजन के सहज रूप से होता था। इसका एक बड़ा और मनोवैज्ञानिक परिणाम यह होता था कि परिवार के हर सदस्य के मन में उठने वाले क्रोध, लोभ, मोह, क्षोभ, घृणा जैसे चित्त के मनोविकारों का परिशोधन तथा शमन सहज रूप से हो जाता था। परिवार के किसी सदस्य पर कभी कोई संकट हुआ तो पूरे का पूरा परिवार उसकी सहायता को उठ खड़ा हो जाता था। ऐसे में व्यक्तिगत लाभ-हानि जैसा कुछ नहीं होता था। इस प्रक्रिया में परिवार के हर सदस्य की एक स्वाभाविक शिक्षा होती रहती थी जो स्थाई संस्कार में परिणत होती थी।

आज समय और समाज के बदलते परिवेश में परिवार संस्था के छिन्न-भिन्न होने से संस्कारों की शिक्षा का आरंभिक तथा आधारभूत संस्थान टूटने लगा है। इसलिए अब सारा दारोमदार शिक्षा पद्धति पर ही है कि वह ऐसे नागरिकों का निर्माण करे जो जीवन की ऊँचाई और गहराई दोनों को अपने व्यक्तित्व में समाहित करे।

वैदिक परिभाषा में समुद्र और अन्तरिक्ष पर्यायवाची शब्द माने गए हैं, इसका आशय भी यही है कि एक ही व्यक्ति में समुद्र-सी गहराई तथा आकाश जितनी ऊँचाई हो सकती है। शिक्षा से हर व्यक्ति जीवन भर इसी गहराई और ऊँचाई को समान भाव से संस्कार रूप में अर्जित करता है।

मनुष्य ने अपनी बुद्धि के बल पर हर युग में अपनी बेहतरी के अनेक मार्ग खोजे हैं, किन्तु भारतीय शिक्षा पद्धति में जीवन का दृष्टिकोण अलग प्रकार का तथा

विशिष्ट रहा है। वैज्ञानिक उन्नति की चकाचौंध से चमत्कृत होकर भौतिकवाद की अंधी दौड़ से बचते हुए सम्यक जीवन जीने की कला सम्यक शिक्षा ही सिखाती है। यह एक विशिष्ट संस्कार है जो शिक्षा के द्वारा ही अर्जित किया जाता है।

प्राणीजगत की सर्वोत्कृष्ट विभूति मनुष्य है और मनुष्य की उत्पत्ति अंग-प्रत्यंग सहित संपूर्ण आदिसृष्टि में ही हुई थी। प्रथम मनुष्य वस्त्रविहीन, गृहविहीन काननवासी रहा था। धीरे-धीरे बुद्धि के विकास अर्थात् शिक्षा के विकास से ही उसने जीवन के विकास के अनेक चरण पार किए हैं।

वस्तुत: बौद्धिक सक्रियता और निष्क्रियता दो पहलू हैं शिक्षा के, जो व्यक्ति के साथ परिघटना में बदलते हैं। सक्रियता मनुष्य को रूढ़ियों से मुक्ति देकर समृद्ध परंपराओं के अनुसरण का अभ्यास संस्कार रूप में देती है। यह संस्कार सतत् शिक्षा के बिना नहीं आ सकता। आज शिक्षार्थी को हम कैसा वातावरण उपलब्ध करवा रहे हैं? आज बालकों के चारों ओर वातावरण में जीवन की किन चीजों, विचारों तथा व्यवहार का बोलबाला है, इससे नई पीढ़ी के संस्कारों की पुष्टि का आधार तैयार होता है।

जीवन को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का अभ्यास भी प्रमुख संस्कारों में से एक है। जीवन की जड़ता को तोड़कर पुरुषार्थ से, ऊर्जा से, सम्यक चेतना से जीवन को देखने, समझने और जीने की कला संस्कार ही तो है। तर्क तथा अध्यात्म के सम्मिलन से एक व्यावहारिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है जिससे हमारी तात्कालिक तथा भविष्य की समस्याओं का समाधान तो मिलता ही है साथ ही संपूर्ण जीवन सार्थक भी होता है। बाकी जन्म से मृत्यु पर्यन्त किये जाने वाले सोलह संस्कारों का सामाजिक महत्त्व हो सकता है, परन्तु जीवन की सफलता व सार्थकता में उनकी विशेष भूमिका नहीं होती। ये निश्चित तिथि में निश्चित विधि से किये जाने वाले आरंभिक आचरण तो हो सकते हैं किन्तु उन उद्देश्यों की प्राप्ति पुरुषार्थ से ही की जा सकती है।

क्या यह सच नहीं है कि राष्ट्र के कल्याण की भावना अपने आप में एक विराट संस्कार है? राष्ट्रवाद की बलवती भावना एकाकी जीवन में उतनी प्रखर नहीं हो पाती जितनी समूह में होती है। इसीलिए जीवन के इन उदात्त तथा महत् संस्कारों का परिपाक सामूहिक शिक्षा के माध्यम से प्रबलतापूर्वक होता है। इस अर्थ में संस्कार ही धर्म है, धर्म में जो-जो अच्छी और मानव-कल्याण की, प्राणिमात्र के कल्याण की निरुक्तियाँ होती हैं वे सब संस्कार हैं जिनका प्रमुख माध्यम शिक्षा है। इस नाते शिक्षा भी धर्म है। यदि कोई धर्म, शिक्षा के इन सभी आधारभूत उद्देश्यों की पूर्ति करता है तो वह धर्म संस्कारों का ही प्रक्रम है। 'हिन्दुत्व' इन सारे उद्देश्यों को पूर्ण करना सिखाने की पाठशाला है। यद्यपि यह हिन्दुवाद से भिन्न है। 'हिन्दुत्व' की परिभाषा करते हुए श्री विनायक दामोदर सावरकर ने लिखा है- ''जो नाम मानव जाति के लिए जीवनप्रद और कर्तव्यसूचक तथा गौरवपूर्ण रहे हैं उन्हीं में से एक है हिन्दुत्व। इस नाम के साथ इतनी भावनाएँ और पद्धतियाँ संलग्न हैं और वे इतनी बलवती, गहन तथा गंभीर हैं कि इस नाम का विश्लेषण तथा व्याख्या करना असंभवप्राय होता है। अनेक महानतम योद्धा तथा इतिहासज्ञ, दार्शनिक व कविगण, विधिज्ञ और विधि-निर्माता, शास्त्रों के प्रकाण्ड पंडित इसी नाम के लिए संघर्ष करते रहे हैं, उन्होंने उसके लिए संग्राम ही नहीं किया, अपितु सर्वस्व भी समर्पित किया है। क्या यह नाम हमारी जाति के असंख्य कार्यों का ही प्रतिफल मात्र नहीं है? कभी युद्ध तो कभी मिलन और कभी पारस्परिक सहकार के रूप में हिन्दू जाति ने जो कुछ भी किया है वह सभी कुछ इस नाम 'हिन्दुत्व' में ही समाहित है।'' (हिन्दुत्व-विनायक दामोदर सावरकर, हिन्दू साहित्य सदन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ. 10-11)

इस पूरे विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि हिन्दुत्व समूचे अर्थ में एक विराट तथा महान् संस्कार ही है जो यदि व्यवहार जगत् में क्रियाशील होता है तब संस्कारवान्, राष्ट्रवादियों का निर्माण होता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शिक्षा व संस्कारों के प्रतीकों की देवी सरस्वती की हम आराधना भी इसीलिए करते हैं कि भगवती सरस्वती हमारे लिए ज्ञान का मूर्त रूप हैं। वो उस दुनिया को परिलक्षित करती हैं जो सूचना तथा बोधगम्यता को हम तक संप्रेषित करती हैं तथा प्रेरणा देती हैं। वो किसी आभूषण या सौंदर्य-प्रसाधन का उपयोग नहीं करती और किसी आडंबर की इच्छा से इतर उनका पहनावा सादी-सफेद साड़ी है। उनकी एकाग्रता का प्रतीक बगुला है या बौद्धिक विवेक का प्रतीक हंस है जिसमें दूध मिले पानी से दूध और पानी को अलग-अलग करने की क्षमता है। वो अपने चारों हाथों में एक वीणा, एक पुस्तक, एक कलम और एक जयमाला रखती हैं। ये सारे प्रश्नों के हल देने वाले प्रतीक हैं जिन्हें प्राप्त करना कुछ दुष्कर किन्तु जो शाश्वत रूप से विश्वसनीय हैं। इन उदाहरणों से हम समझ सकते हैं कि भारतीय शिक्षा का प्राचीनतम स्वरूप कितना तार्किक, व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक रहा है जिससे हर पीढ़ी अपने से अगली पीढ़ी को संस्कारवान बनाती रही है।

अत: हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति ऐसी हो जो हमें नींद में न सुलाए बल्कि नींद से जगाए और लगातार सदुद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रवृत्त करे जो व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के लिए समान रूप से उपयोगी हो। ❑

(सह आचार्य, हिन्दी विभाग,
राजकीय कला महाविद्यालय, दौसा)

संस्कार निर्माण हो शिक्षा का ध्येय

❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

आज जब नई शिक्षा नीति तैयार की जा रही है तो मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता को नकारा नहीं जाना चाहिए। भारत में मूल्यों की शिक्षा के विमर्श की वैदिक काल से ही समृद्ध परम्परा रही है। कमी है तो विमर्श को स्कूली शिक्षा में ठीक से लागू करना। चह्वाण समिति ने सत्य, धर्म (सही आचरण), शान्ति, प्रेम, अहिंसा को मूल्य शिक्षा में वैश्विक आधार बिंदु माना है। सभी पन्थों में इनकी स्वीकार्यता रही है। मूल्यों की शिक्षा एक विषय के रूप में नहीं देकर सम्पूर्ण माध्यमिक शिक्षा का ध्येय ही संस्कारों का निर्माण हो। अच्छे शिक्षक ही अपने व्यवहार से बच्चों में अच्छे संस्कार पैदा कर सकते हैं। संस्कार उत्पन्न करने में भाषा का बहुत महत्त्व होता है। वर्तमान भारत में अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों का अनावश्यक प्रसार चिन्ता का विषय है।

देश आज अनेक संकटों से जूझ रहा है। चारों ओर आतंक का वातावरण है, अपराध रोकने के प्रयास बढ़ाने पर भी अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय संपत्ति को नष्ट करने या चुराने में कोई झिझक नहीं करता। जिस देश में **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'** जैसा ध्येय वाक्य रचा गया वहाँ नारी के प्रति अपराधों की संख्या बढ़ रही है। अल्प वयस्क दुराचारियों की बढ़ती संख्या के कारण वयस्क होने की उम्र को 16 वर्ष करना पड़ा है। कम उम्र की बच्चियों के साथ बढ़ते यौन अपराधों को रोकने के लिए मृत्यु दण्ड का प्रावधान करने को मजबूर हुए हैं। दुखद पक्ष यह है कि भारत के अधिक शिक्षित प्रदेशों में अपराध की दर ऊँची पाई गई है। स्पष्ट है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था बच्चे को अच्छे संस्कार देने में पूर्णत: असफल रही है।

विद्या व अविद्या

यह सही है कि धरती पर रहने वाले प्राणियों में मानव श्रेष्ठ है मगर मूलभूत रूप से मानव भी जानवर ही है। अच्छे संस्कारों के द्वारा ही उसे समाज के योग्य बनाया जाता है। प्राचीन भारत में विद्या व अविद्या द्वारा मानव को संस्कारित किया जाता था। ईशोपनिषद् में कहा गया कि

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं स ह।।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।11।।

विद्या से आत्मा की उन्नति होती है। अविद्या से सांसारिक सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। व्यक्ति को विद्या व अविद्या दोनों को समान रूप से जानना चाहिए। अविद्या, सुविधाएँ प्रदान कर जीवन को सुविधापूर्ण बनाती है। विद्या, मानव को शान्तचित्त रख कर उसे प्रसन्नता प्रदान करती है। भारतीय गुरुकुलों में विद्या व अविद्या दोनों को साथ-साथ प्राप्त किया जाता था। स्वयं की आय तथा सामाजिक सहयोग से चलने वाले गुरुकुलों में शिक्षा पूर्णत: निशुल्क थी।

गुरुकुलों में गुरु का शासन चलता था। बिना अनुमति गुरुकुलों में प्रवेश अनुचित माना जाता था। यज्ञोपवीत संस्कार के साथ शिष्य गुरुकुल में प्रवेश करता था तथा शिक्षा पूर्ण होने पर ही घर लौटता था। शिक्षा पूर्ण होने का आधार निश्चित समय या लिखित परीक्षा नहीं होती थी। शिष्य में समाज के अनुकूल व्यवहारगत परिवर्तन ही शिक्षा पूर्ण होने का आधार होते थे। शिष्य में उसकी क्षमता के अनुरूप संस्कार विकसित करना ही विद्या का एक मात्र उदेश्य रहता था। विद्या व अविद्या के समुचित मिश्रण से ही रामराज्य जैसी आदर्श समाज व्यवस्था बन पाई थी। आदर्श समाज व्यवस्था से भारत विश्व गुरु बना। बिना बल प्रयोग के भारतीय संस्कृति का प्रसार, विश्व में दूर-दूर

तक हो सका। भारतीय संस्कृति ही विश्व की एकमात्र संस्कृति है जो अनेक आक्रमणों व विदेशी शासन को सहन कर सकी तथा जो उत्पति से आज तक निरन्तर चल रही है।

स्वतन्त्रता पूर्व

मुगलों का शासन स्थापित होने का विपरीत प्रभाव, भारतीय विद्या परम्परा पर, पड़ा मगर वह नष्ट नहीं हुई। मैकाले की शिक्षा पद्धति ने भारतीय विद्या परम्परा को प्रयासपूर्वक नष्ट किया। यहीं से विद्या के स्थान पर शिक्षा शब्द का प्रचलन हुआ। शिक्षा का ध्येय सुचारू समाज बनाने से हट कर भारत में अंग्रेजी राज का संरक्षण हो गया। संस्कार निर्माण के स्थान पर येन-केन शासन संचालन करना व वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाना शिक्षा का ध्येय हो गया।

मैकाले शिक्षा प्रणाली की कमियों को देखकर इसका तत्काल विरोध प्रारम्भ कर दिया गया था। मैकाले शिक्षा प्रणाली के स्थान पर राष्ट्रीय शिक्षा की अवधारणा विकसित करने के प्रयास किए गए। संसाधनों की कमी के कारण राष्ट्रीय शिक्षा का अधिक प्रसार नहीं हो पाया।

स्वतन्त्रता बाद भी नहीं सुधरे हालात

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद माध्यमिक शिक्षा में सुधार के सुझाव देते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग ने 1835 से लागू मैकालयी माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था की आलोचना की। आयोग ने कहा कि माध्यमिक शिक्षा विद्यार्थी में चरित्र व अनुशासन स्थापित करने में असफल रही हैं। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने कहा कि राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर भारत पन्थनिरपेक्ष, प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र बन चुका है अत: शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य सुयोग्य नागरिक तैयार करना होना चाहिए।

आयोग का मानना था कि माध्यमिक शिक्षा अपने आप में एक पूर्ण इकाई हो। माध्यमिक शिक्षा को उच्च शिक्षा की तैयारी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। नौकरशाही आयोग की सिफारिशों को लागू नहीं कर पाई। इसके बाद भी कई आयोगों, समितियों ने भारतीय समाज में मूल्यों की स्थापना के लिए सुझाव दिए। 1978 में यूनिसेफ की सहायता से प्राथमिक शिक्षा में न्यूनतम अधिगम स्तर प्राप्त करने के प्रयास प्रारम्भ किए गए। चरित्र निर्माण के लिए नियमितता, समय की पाबन्दी, स्वयं व वातावरण की स्वच्छता, श्रमशीलता, मेहनती होना, समानता में विश्वास, सहयोग की भावना, दायित्व का भान, सत्यनिष्ठा, राष्ट्रीय भावना का विकास आदि असंज्ञानात्मक गुणों का विकास करने की आवश्यकता प्रतिपादित की गई थी। क्रियान्वयन के नाम पर सीमाओं तथा समय की कमी बता कर पल्ला झाड़ लिया गया।

1986 की शिक्षानीति में भी मूल्यों की शिक्षा को सम्मिलित किया गया। कुछ भी सुधार नहीं हुआ, स्थिति बद से बदतर होती गई। मानव संसाधन विभाग की संसदीय समिति ने 1997 में महाराष्ट्र के कांग्रेसी नेता शंकरराव चह्वाण के नेतृत्व में एक उपसमिति गठित कर देश में मूल्यों की शिक्षा व्यवस्था प्रभावी बनाने के सुझाव देने को कहा। समिति ने अनुभव किया कि शैक्षिक सुधारों को लागू करने वाले घटकों में उचित समन्वय नहीं होने के कारण, स्वतन्त्रता के 50 वर्ष बाद भी, कुछ सार्थक कार्य नहीं किया जा सका है। समिति ने देश में मूल्यों की शिक्षा की स्थिति का 2 वर्ष तक अध्ययन कर 1999 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

चह्वाण समिति ने कहा कि भारत एक प्राचीन व विविधताओं से भरा देश है। विविधताओं के बावजूद देश की परम्पराओं में ऐसे तत्त्व उपस्थित हैं जिनके कारण भारत हजारों वर्षों से एकता के सूत्र में बंधा रहा है। समय-समय पर अनेक महान आत्माएँ देश में जन्म लेकर आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देती रही है। समिति ने युवा पीढ़ी में जीवन मूल्यों को विकसित करने के कई सुझाव भी दिए।

वामपंथी हल्ला

मानव संसाधन मंत्री के रूप में श्री मुरलीमनोहर जोशी ने सन 2000 की राष्ट्रीय शिक्षा रूपरेखा में श्री शंकरराव चह्वाण समिति के सुझावों को सम्मिलित किया था। रूपरेखा के प्रकाशन के साथ ही वामपंथी लॉबी ने 'धर्म' शब्द को समझे बिना ही उसके विरुद्ध हल्ला बोल दिया। मूल्यों की शिक्षा का क्रियावन्यन आगे नहीं बढ़ पाया। कांग्रेस सरकार की वामपंथ प्रभावित 2005 की राष्ट्रीय शिक्षा रूपरेखा में श्री शंकरराव चह्वाण समिति की मूल्यों की शिक्षा की बात को छोड़ कर शान्ति की शिक्षा की बात की गई मगर 10 वर्ष के शासन काल में कांग्रेस सरकार कुछ भी नहीं कर पाई।

क्या हो भविष्य का मार्ग

आज जब नई शिक्षा नीति तैयार की जा रही है तो मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता को नकारा नहीं जाना चाहिए। भारत में मूल्यों की शिक्षा के विमर्श की वैदिक काल से ही समृद्ध परम्परा रही है। कमी है तो विमर्श को स्कूली शिक्षा में ठीक से लागू करने की है। चह्वाण समिति ने सत्य, धर्म (सही आचरण), शान्ति, प्रेम, अहिंसा को मूल्य शिक्षा में वैश्विक आधार बिंदु माना है। सभी पन्थों में इनकी स्वीकार्यता रही है। मूल्यों की शिक्षा एक विषय के रूप में नहीं देकर सम्पूर्ण माध्यमिक शिक्षा का ध्येय ही संस्कारों का निर्माण हो। अच्छे शिक्षक ही अपने व्यवहार से बच्चों में अच्छे संस्कार पैदा कर सकते हैं। संस्कार उत्पन्न करने में भाषा का बहुत महत्त्व होता है। वर्तमान भारत में अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का अनावश्यक प्रसार चिन्ता का विषय है।

मूल्यों की स्थापना में समाज का सक्रिय सहयोग लेना हो तो मुहल्ले की स्कूल की अवधारणा को सजीव करना होगा। अमेरिका में मुहल्ले के स्कूल चल सकते हैं तो भारत में क्यों नहीं? स्कूलों में संस्कार उत्पन्न करने की व्यवस्था करना मोदी सरकार की प्राथमिकता में सम्मिलित है मगर मानव संसाधन मंत्रालय अभी तक उसे मूर्तरूप नहीं दे पाया है। वर्तमान मानव संसाधन मंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर ने पाठ्यचर्चा को आधा करने की बात करके अच्छा संकेत दिया है। देखना है कि नई शिक्षा नीति इस क्षेत्र में और क्या कर पाती है? ❑

(बाल साहित्य एवं विज्ञान विषयक लेखक)

संस्कार का अर्थ और आवश्यकता

❑ डॉ. दिनेश शर्मा

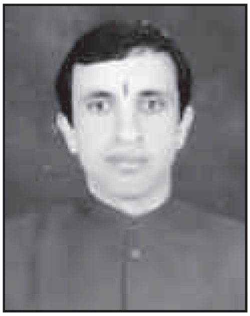

संसार के किसी भी कर्म को सम्पादित करने के लिए सर्वप्रथम अधिकार प्राप्ति की आवश्यकता होती है। मनुस्मृति पर टीका लिखते हुए मेधातिथि कहते हैं - संस्कारों से संस्कृत हुआ मनुष्य ही आत्मोपासना का अधिकारी होता है। संस्कार द्वारा अच्छे प्रकार से संस्कृत होकर जीवन अपने को भगवत्प्राप्ति के योग्य बना सकता है। और संस्कार ही वे तथ्य हैं जो जीवन को गतिशील बनाते हैं। भौतिकवादी युग के मनुष्य को बिना उद्देश्य इधर-उधर भटकने के बदले उसको सावधानीपूर्वक एक निश्चित साँचे में ढालना चाहिए। संस्कार के द्वारा मनुष्य के लिए कर्त्तव्य तथा सदाचार की शिक्षा प्राप्त होती है।

समग्र संसार में सर्वाधिक विवेक प्राप्त प्राणी मनुष्य है। मानव शरीर भी ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होता है ऐसा शास्त्र कहते हैं। केवल मनुष्य को ही यह सुअवसर प्राप्त है कि वह अपने भविष्य का निर्माण करे। भविष्य को देखकर ही शास्त्रों का सृजन हुआ है। जीव का लक्ष्य परम तत्त्व की प्राप्ति है और वह तत्त्व शास्त्र सम्मत जीवनचर्या द्वारा ही सम्भव है। जीव की जीवनचर्या तभी ईश्वरोन्मुख होगी जब उसके शास्त्र सम्मत संस्कार परिपूर्ण होंगे। संस्कार का जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से घञ् प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न होती है। संस्कार शब्द का अर्थ है सुसंस्कृत, परिष्कृत, अभिमन्त्रित और पवित्रीकृत। मानव के आध्यात्मिक अभ्युदय एवं वस्तुओं की शुद्धि के लिए समय-समय पर किये जाने वाले अनुष्ठान विशेष जिनके करने से शरीर और अन्तःकरण शुद्ध एवं पवित्र होता है संस्कार कहलाता है। जीव ईश्वर का अंश है यह तथ्य निर्विवाद है। जीव को ईश्वर तुल्य बनाने के लिए ही संस्कार किये जाते हैं।

मीमांसादर्शन के सुप्रसिद्ध भाष्यकार शबर स्वामी संस्कार के विषय में कहते हैं - संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के योग्य हो जाता है। अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं जो योग्यता प्रदान करती हैं। योग्यता भी दो प्रकार की होती है- 1. पापमोचन से उत्पन्न योग्यता, 2. नवीन गुणों से उत्पन्न योग्यता। संस्कार के द्वारा नवीन गुणों की प्राप्ति तथा पापों का मार्जन और परिष्कार होता है। शास्त्रकारों का मत है कि नवजात शिशु का मस्तिष्क कोरी पट्टी के समान नहीं है जिस पर बिल्कुल नवीन लेख लिखना है, इसके विरुद्ध इस पर उसके अनेक पूर्वजन्मों के संस्कार अङ्कित हैं। साथ ही साथ उनका यह भी विश्वास है कि नवीन संस्कारों द्वारा पुराने संस्कारों को प्रभावित, उनमें परिवर्तन, परिवर्धन और उनका उन्मूलन भी किया जा सकता है। मूल रूप से प्रतिकूल संस्कारों का विनाश और अनुकूल संस्कारों का निर्माण ही संस्कारों का मूल प्रयोजन है। संस्कारों की सहायता से मानव चरित्र के निर्माण और व्यक्तित्व के विकास का प्रयत्न किया जाता है।

संस्कार क्या है? इसको केवल बाहरी धार्मिक आडम्बर मात्र समझना भूल है। यद्यपि इसमें बाहरी कृत्य अवश्य हैं तथापि ये आन्तरिक आध्यात्मिक सौंदर्य के बाह्य दृष्ट रूप हैं और इसी में संस्कार की महत्ता है, आध्यात्मिक जीवन से विच्छेद होने पर ये मृत अस्थिपञ्जर के समान हैं जिसमें गति और जीवन नहीं है। संस्कार शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। जैसे- कौषीतकि, छान्दोग्योपनिषद् और बृहदारण्यकोपनिषद् आदि ने इसका प्रयोग उन्नति करने के अर्थ में किया है। महर्षि पाणिनि ने संस्कार शब्द का प्रयोग तीन अलग-अलग अर्थों में किया है- 1. उत्कर्ष करने वाला, 2. समवाय या संघात और 3. आभूषण। ब्राह्मण और सूत्रग्रन्थों ने संस्कार शब्द का व्यवहार यज्ञ की सामग्रियों को पवित्र करने के अर्थ में किया है। बौद्ध दर्शन ने संस्कार को भवचक्र की बारह शृंखलाओं में से एक माना है। आस्तिक दर्शनों में संस्कार का प्रयोग भिन्न अर्थों में हुआ है। यहाँ संस्कार का अर्थ योग्य पदार्थों की अनुभूति की छाप है। अद्वैत वेदान्त में आत्मा के ऊपर मिथ्याभ्यास के रूप में संस्कार का प्रयोग हुआ है। वैशेषिकों ने चौबीस गुणों में से इसको एक माना है और संस्कृत साहित्य में बड़े व्यापक अर्थ में संस्कार शब्द का प्रयोग हुआ है। धर्मशास्त्रियों ने मानव जीवन को पवित्र और उत्कृष्ट बनाने वाले समय-समय पर होने वाले षोडश धार्मिक कार्यों को संस्कार माना है। मुख्य रूप से इसी अर्थ में संस्कार शब्द का प्रयोग किया गया है। संस्कार शब्द इतना व्यापक है कि अनेक प्रकार के भावों और अर्थों का समावेश इसमें समाहित है। इसीलिए विद्वानों ने संस्कार को एक विचित्र

अनिर्वचनीय पुण्य उत्पन्न करने वाला धार्मिक कृत्य कहा है।

संस्कारों का मूल उद्देश्य तीन रूपों में परिलक्षित होता है- 1. दोष मार्जन, 2. अतिशयाधान तथा 3. हीनाङ्गपूर्ति। खान से निकला हुआ लोहा अत्यन्त मलिन होता है। प्रथमतः सफाई (मार्जन) द्वारा उसका दोषमार्जन करते हैं, फिर आग की नियमित आँच (ताप) में तपाकर उससे इस्पात तैयार किया जाता है और इस्पात से फिर अभिलषित वस्तुओं का निर्माण किया जाता है जिसे अतिशयाधान कहते हैं। फिर उस वस्तु में प्रयोग में आने लायक जो कमी होती है, उसकी पूर्ति की जाती है। यह क्रिया हीनाङ्गपूर्ति कहलाती है। इसी प्रकार से अन्न में से भूसे के तिनकों, खरपतवार के दानों और मिट्टी पत्थर के कणों को निकालना दोषमार्जन है। कूटना-पीसना तथा अग्निपर पकाना अतिशयाधान है और उसमें नमक एवं मीठा डालना (मिलाना) ही हीनाङ्गपूर्ति है।

जीवन में संस्कारों का इतना अधिक महत्त्व है कि महर्षि आश्वलायन ने तो यहाँ तक कह दिया है कि **'संस्कार रहिता ये तु तेषां जन्म निरर्थकम्।'** अर्थात् जिसे संस्कार प्राप्त नहीं हो सके, उसका जीवन निरर्थक है, निष्फल है। जीवन को सार्थक बनाने के लिए संस्कार आवश्यक हैं। संस्कार के अभाव में मनुष्य पशुवत् है। संस्कार व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाते हैं। ठीक इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु हमारे ऋषियों ने जीवन को अपने परम लक्ष्य (मोक्ष) तक पहुँचाने हेतु विविध संस्कारों की शास्त्रीय व्यवस्था दी है।

गर्भाधान, जातकर्म, अन्नप्राशन आदि संस्कारों से दोषमार्जन, उपनयन (यज्ञोपवीत) ब्रह्मव्रत आदि संस्कारों से अतिशयाधान एवं विवाह, अग्न्याधानादि संस्कारों से हमारे जीवन की हीनाङ्गपूर्ति होती है। इस प्रकार से संस्कारों की अनेक विधियों के द्वारा मानव अपने लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ होता है।

संस्कारों की गणना में अनेक मत देखे जाते हैं- आश्वलायन गृह्यसूत्र में- 11, पारस्कर, बोधायन एवं वाराह गृह्यसूत्रों में- 13 तथा वैखानस गृह्यसूत्र में - 18 संस्कारों का उल्लेख है। गौतम धर्म सूत्र में-48 संस्कारों का वर्णन है। व्यास स्मृति में-16 संस्कारों का उल्लेख प्राप्त है। अङ्गिरा ने 25 संस्कारों को बतलाया है। इस प्रकार से संस्कारों की संख्या भिन्न-भिन्न होने पर भी मुख्यरूप से 16 संस्कार सम्पन्न करने का ही अन्तर्निवेश बहुधा प्राप्त होता है।

इन संस्कारों में गर्भाधान से लेकर उपनयन पर्यन्त आठ संस्कार प्रवृत्ति मार्गी एवं शेष ब्रह्मवर्त से संन्यास पर्यन्त आठ संस्कार निवृत्तिमार्गी हैं।

संस्कारों की आवश्यकता

संसार के किसी भी कर्म को सम्पादित करने के लिए सर्वप्रथम अधिकार प्राप्ति की आवश्यकता होती है। मनुस्मृति पर टीका लिखते हुए मेधातिथि कहते हैं - संस्कारों से सुसंस्कृत हुआ मनुष्य ही आत्मोपासना का अधिकारी होता है। संस्कार द्वारा अच्छे प्रकार से संस्कृत होकर जीव अपने को भगवत्प्राप्ति के योग्य बना सकता है। और संस्कार ही वे तथ्य हैं जो जीवन को गतिशील बनाते हैं।

भौतिकवादी युग के मनुष्य को बिना उद्देश्य इधर-उधर भटकने के बदले उसको सावधानीपूर्वक एक निश्चित साँचे में ढालना चाहिए। संस्कार के द्वारा मनुष्य के लिए कर्त्तव्य तथा सदाचार की शिक्षा प्राप्त होती है। आज के युग का व्यक्ति संस्कार विहीन होने पर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया है और आचार (सदाचार) से भी पतित हो गया है। पाश्चात्य दृष्टिकोण को अपना कर हमने अपने धार्मिक विचारों और संस्कारों को खो दिया है। धर्म, व्रत, त्योहार, उपासना, यज्ञ और संस्कार पर हमारी आस्था कम हो गई है हम इसका उपहास करते हैं। यही कारण है कि हम दुःखी हैं, परेशान हैं। हमारे धर्म और संस्कारों में गूढ़ रहस्य छिपा है जिसको आत्मसात करने के लिए ऋतम्भरा प्रज्ञा की आवश्यकता होती है जो संस्कारजन्य है।

संस्कारों का प्रारम्भ अभ्यास से होता है, संस्कार डालना पड़ता है क्योंकि दोषों का परिशोधन प्रयासपूर्वक ही होता है। ये संस्कार जितनी छोटी आयु में या जितने जल्दी किये जा सकें उतने ही सफल होते हैं। संस्कारों का कार्य एवं उद्देश्य गुणों का अधिकतम विकास करना है। दोषों का परिष्कार करने की क्षमता मानव जीवन में ही है, क्योंकि मनुष्यों में गुण दोषों को परखने की बुद्धि होती है। संस्कारों का सर्वाधिक महत्त्व चित्त शुद्धि में है। मलिनता तो साबुन पानी से धोई जा सकती है परन्तु मन की नहीं, मन की मलिनता ही सबसे अधिक दुःखदायी है शारीरिक संस्कारों द्वारा दूर की जा सकती है इन्द्रियों का प्रेरक भी मन है इसलिए इसकी एतैस्तु संस्कृत आत्मोपासना स्वधिक्रियते।❑

(दर्शनाचार्य,रा.सं.महाविद्यालय,सोलन, हि.प्र.)

शिक्षा सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज की आधारशिला है, शिक्षा के अभाव में इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति में बौद्धिक जागृति होती है और इसके द्वारा वह नवीन सांस्कृतिक मूल्यों की रचना करता है। शिक्षा के द्वारा ही संस्कृति विकासोन्मुख होती है। शिक्षा जीवन की राह प्रशस्त करती है, जीवन का मार्ग दिखाती है और जीवन को सुखद बनाती है। शिक्षा के द्वारा मानव बुराई से अच्छाई की ओर, हीनता से उच्चता की ओर, असंभव से संभव की ओर, हिंसा से अहिंसा की ओर, पशुता से मनुष्यता की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करती है। यही जीवन मूल्य है, यही संस्कृति है, जिसका निर्माण शिक्षा से होता है।

संस्कृति परिष्करण शिक्षा से संभव

❑ **बजरंग प्रसाद मजेजी**

प्रत्येक राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक विरासत, अपने दायित्व तथा अपने साहित्य-दर्शन के बल पर जीवित रहता है और अपने राष्ट्रीय लक्षणों को संरक्षित रखता है। सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण रखने में शिक्षा की महती भूमिका होती है तथा यह सर्वथा सत्य है कि इसे आवश्यकतानुसार नवीनीकृत करना शिक्षा द्वारा ही संभव है। सांस्कृतिक मूल्यों के विकास एवं विस्तार के लिए शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है जिसके द्वारा मानव अपने अनुभूतिजन्य अनुभवों को, समाज एवं उसकी तरुण पीढ़ी में संचारित करता है। ऋषियों-मुनियों द्वारा जो शिक्षा दी जाती थी, वह उनका समग्र ज्ञान था, वे संस्कृति के रक्षक थे तथा शिष्य को गुणी बनाकर, शिक्षा के द्वारा संस्कृति के रक्षकों का निर्माण करते थे। शिक्षा के द्वारा कर्म से लेकर धर्म तक, नैतिक शिक्षा से चरित्र निर्माण तक, शास्त्रार्थ से युद्ध कौशल तक व्यवहार से आचरण तक की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा के द्वारा अच्छा इन्सान बनने, मानवीय गुणों को अपनाकर समाज एवं देश की सेवा करना, सहयोग की भावना विकसित करना, सबसे हिल-मिल कर रहने की शिक्षा दी जाती थी। अनेक देशों में समता का जब विकास भी नहीं हुआ था, तब भारत में ऋषियों, आचार्यों ने ज्ञान का प्रकाश सम्पूर्ण विश्व को दिया। आदि गुरु शंकराचार्य, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य, महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास ने भारतीय संस्कृति के पोषण में महती भूमिका का निर्वाह किया है। शिक्षा के द्वारा मानव में चिंतन, चरित्र, व्यवहार, दृष्टिकोण को आदर्शोन्मुख किया जाता है। शिक्षा मनुष्य में सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाती है। शिक्षा सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज की आधारशिला है, शिक्षा के अभाव में इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति में बौद्धिक जागृति होती है और इसके द्वारा वह नवीन सांस्कृतिक मूल्यों की रचना करता है। शिक्षा के द्वारा ही संस्कृति विकासोन्मुख होती है। शिक्षा जीवन की राह प्रशस्त करती है, जीवन का मार्ग दिखाती है और जीवन को सुखद बनाती है। शिक्षा के द्वारा मानव बुराई से अच्छाई की ओर, हीनता से उच्चता की ओर, असंभव से संभव की ओर, हिंसा से अहिंसा की ओर, पशुता से मनुष्यता की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करती है। यही जीवन मूल्य है, यही संस्कृति है, जिसका निर्माण शिक्षा से होता है। शिक्षा मात्र संस्कृति की

वाहिका नहीं है। वह केवल परम्परागत अवधारणाओं को आगे की पीढ़ी को हस्तान्तरित ही नहीं करती अपितु उनको समय के अनुरूप नये रूप में ढालकर, उसे युगानुरूप बना देती है। इस प्रकार शिक्षा जीवन के वास्तविक लक्ष्यों का निर्धारण करती है। शिक्षा का एक हिस्सा प्रकृति प्रदत्त है और दूसरा हिस्सा संस्कृति निर्मित है। जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार 'उचित प्रकार की शिक्षा का अर्थ है, प्रज्ञा को जाग्रत करना तथा समन्वित जीवन को पोषित करना और केवल ऐसी ही शिक्षा एक नवीन संस्कृति तथा शान्तिमय विश्व की स्थापना कर सकेगी। शिक्षा और संस्कृति का सम्बन्ध घनिष्ठ है और शिक्षा प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति की पोषक है। शिक्षा के माध्यम से ही संस्कृति का परिष्करण होता है।'

संस्कार से संस्कृति का अभ्युदय

किसी समाज, जाति अथवा राष्ट्र के समस्त मानवों के उदात्त संस्कारों के समूह का नाम संस्कृति है। संस्कृति वह तत्त्व है जो हमारे अन्दर समाहित है। संस्कृति एक शैली है, जो सामाजिक मान्यताओं, आदर्शों एवं मूल्यों का संगठन है। संस्कृति व्यक्तिनिष्ठ न होकर अनेक व्यक्तियों द्वारा दिया गया बौद्धिक प्रयास है। इसके अन्तर्गत धर्म, दर्शन, कला एवं मानसिक चिन्तन समाविष्ट है। संस्कृति परम्परा से प्राप्त विचार मूल्य, कला, शिल्प, वास्तु तथा स्वभाव संस्कृति के अंग हैं। भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व आध्यात्मिकता, सर्वपंथ समादर, विविधता में एकता, समन्वय, सार्वभौमिकता है जिसे प्रत्येक भारतीय दृढ़ता से आदर देकर, पालन करता है। भारतीय संस्कृति में साहित्य, संगीत, रीति-रिवाज, त्योहार, भाषाएँ, रहन सहन जैसे कई तत्त्व हैं, जो संस्कृति में समाहित है। स्वामी करपात्रि जी ने कहा है कि 'लौकिक-पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक और राजनैतिक अभ्युदय जिस विधि से होता है, वही संस्कृति है।'

भारतीय संस्कृति की विरासत शाश्वत एवं चिरस्थायी है। विश्व में ज्ञान का सूर्य उदय हुआ है तो सर्वप्रथम भारत में ही हुआ है। भारत को विश्व ने गुरु माना है। भारतीय संस्कृति मात्र इतिहास, धर्म, परम्परा का सम्मिश्रण ही नहीं है, अपितु यह एक संश्लिष्ट व्यावहारिक परिवार है, जिसकी अभिव्यक्ति सहयोग, सहकार, सद्भाव, सहअस्तित्त्व जैसे गुणों से होती है। भारतीय संस्कृति का अर्थ सहानुभूति, विशालता, विश्वबन्धुत्त्व, प्रगति की ओर बढ़ना है। इसके निर्माता नियन्त्रक और नियामक निर्देशक ऋषिगण, आचार्य, संतगण, महापुरुषों के असीम ज्ञान चिंतन, युग ग्रन्थों ने हमारी संस्कृति को उच्च स्थान प्रदान किया है। वेद, उपनिषद, पुराण, महाभारत, रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता ने संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के सूत्र एवं निहित शिक्षा ने विश्वबन्धुत्त्व की भावना- वसुधैव कुटुम्बकम् का ज्ञान दिया है। भारतीय संस्कृति में जितनी गहरी अनुभूति, संवेदना और उदात्त भावना है, वैसी किसी भी राष्ट्र की संस्कृति में दिखाई नहीं देती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है-

'युग-युग के संचित संस्कार,
ऋषि मुनियों के उच्च विचार' ❑

(स्वतन्त्र लेखक)

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ झारखण्ड प्रदेश प्रतिनिधि सम्मेलन बोकारो में सम्पन्न

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ झारखण्ड प्रदेश का एक दिवसीय प्रांतीय प्रतिनिधि सम्मेलन सरस्वती विद्या मंदिर, जनवृत 3 'सी' बोकारो इस्पात नगर में 23 जून 2018 को सम्पन्न हुआ।

प्रांतीय प्रतिनिधि सम्मेलन का उद्घाटन अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर, उच्च शिक्षा संवर्ग प्रभारी महेन्द्र कुमार एवं प्रांतीय अध्यक्ष डॉ. अशोक कुमार सिंह द्वारा संयुक्त रूप से दीप प्रज्वलन एवं सरस्वती वंदना द्वारा हुआ। संघ के कार्यक्रम पर परिचर्चा करते हुए डॉ. अशोक कुमार सिंह ने कहा कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ से सम्बद्ध राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ झारखण्ड प्रदेश का वर्ष 2004 में झारखण्ड सरकार से निबंधन हुआ। तब से अब तक उतार-चढ़ाव के बावजूद महासंघ उतरोत्तर अग्रसर है और बहुत जल्द ही झारखण्ड के 24 जिलों में इसकी इकाई का गठन होना है। यही हमारी ताकत बनेगा और हम अपने राष्ट्र हित के साथ शिक्षक समस्याओं के समाधान के लिए संघर्षरत रहेंगे।

सम्मेलन में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर ने कहा कि यह संगठन मात्र शिक्षक संगठन न रहकर राष्ट्रीय विचारधारा के साथ समस्याओं के समाधान की ओर अग्रसर होने वाला संगठन है। उन्होंने कहा कि यह संगठन सदैव राष्ट्र को प्राथमिकता देते हुए शिक्षकों के हितों की बात करता है। उन्होंने शिक्षकों के सम्मान में अवमूल्यन की चर्चा करते हुए कहा कि आज कहीं न कहीं समाज दिग्भ्रमित है और इस दिग्भ्रमण के परिणामस्वरूप आये दिन अनेक तरह के सामाजिक कुरीतियाँ पनप रही हैं। उन्होंने शिक्षकों से समाज को राह दिखाने की अपील की। उन्होंने कहा कि संगठन के द्वारा किए जाने वाला कार्यक्रम यथा कर्तव्यबोध दिवस, वर्ष प्रतिपदा, गुरुवन्दन, शाश्वत जीवन मूल्य तथा जन जागरण अभियान चलाकर शिक्षक समाज को दिशा दे सकते हैं।

उच्च शिक्षा संवर्ग प्रभारी श्री महेन्द्र कुमार ने संगठन को समाजहित के साथ आगे बढ़ने की बात कही। उन्होंने शाश्वत जीवन मूल्य पर चर्चा करते हुए कहा कि हम अपने जीवन में मानवीय मूल्यों को खोते जा रहे हैं। शिक्षक ही समाज में जागरुकता फैलाकर मानवीय मूल्यों के महत्त्व को समझाते हुए एक आदर्श परिवार, समाज एवं राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। सरकारें आती जाती रहती है पर शिक्षक स्थायी है। जीवन जीने की कला सिखाने का कार्य शिक्षक का ही है।

समापन सत्र में प्रांतीय अध्यक्ष डॉ. अशोक कुमार सिंह के द्वारा सभी तरह के प्रांतीय कार्यकारिणी को भंग करने की घोषणा की गई तत्पश्चात् निर्वाचन अधिकारी डॉ. बृजेश कुमार ने निर्वाचन प्रक्रिया पूर्ण कर संगठन की नई प्रांतीय कार्यकारिणी का गठन किया गया। प्रांतीय प्रतिनिधि सम्मेलन में प्रदेश के 13 जिलों के 102 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

हमारे संविधान में वर्णित अपने कर्त्तव्यों के प्रति हमारा क्यों अलगाव हो गया? हमारी सोच क्यों कुण्ठित हो गई? प्रत्येक व्यक्ति में संवेदनशीलता महत्त्वपूर्ण गुण है। परन्तु उसके नष्ट होने के साथ साथ हमारा विवेक व स्वतंत्र चिंतन क्यों नष्ट हो गया? हमारा संविधान है, उसमें मूल अधिकार व मूल कर्त्तव्यों का वर्णन है परन्तु हम इनके प्रति भी विमुख क्यों हो गये? इसलिए आज सम्पूर्ण देश में संस्कारों के साथ-साथ सामाजिक, पारिवारिक व राष्ट्रीय दायित्वों पर चर्चा होती रहती है। यह होना स्वाभाविक भी है क्योंकि वैश्विक परिदृश्य का प्रभाव भारतीय संस्कृति व संस्कारों पर भी पड़ा है हमने भारतीय जीवन परम्परा को त्याग कर पाश्चात्य जीवन शैली को अपना लिया है या हमने भारतीय चिंतन को आत्मसात न कर, विचारों के प्रवाह को अनवरत नहीं रखा।

संस्कार सृजन का आधार : आर्ष महाकाव्य

❑ प्रो. मधुर मोहन रंगा

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अधिकतर प्रिन्ट व इलेक्ट्रोनिक मीडिया में व्यक्ति व समाज में संस्कारों की कमी के समाचारों को प्रमुखता से स्थान मिलता है। ऐसा नहीं है कि पाठकों की प्रथम वरीयता नकारात्मक समाचार होते हैं, परन्तु समाज का दर्पण कहलाने वाले पत्रों में जब ऐसे समाचारों को वरीयता मिलती है, तब सामान्य जन यह सोचने को विवश हो जाता है कि इसके क्या कारण है? चर्चा होती है, सेमिनार, संगोष्ठियों का आयोजन होकर यही निष्कर्ष निकलता है कि संस्कारों के पतन का प्रमुख कारण है हमारी शिक्षा व्यवस्था, पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या आदि आदि। परन्तु यक्ष प्रश्न यही है कि हम बार-बार उपर्युक्त कारणों को श्रेणीबद्ध कर अपने भगीरथ प्रयास की इतिश्री कर लेते हैं। परन्तु क्या संस्कारों के अनवरत प्रवाह सम्प्रेषण व परिमार्जन न होने में सिर्फ शिक्षा प्रणाली का ही दोष है या उसके अन्य कारण भी है क्योंकि स्वाधीनता के बाद शिक्षा आयोग बने समय-समय पर शिक्षा नीति बनी, कभी राधाकृष्णन् आयोग, कोठारी आयोग, ज्ञान आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति आदि ने भी नैतिक मूल्यों व संस्कारों के सृजन पर बल दिया। परन्तु देश की अखण्डता, शांति, समरसता व संस्कार जैसे तत्त्वों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है क्योंकि प्रतिदिन देश में एक नया आंदोलन जन्म ले रहा है आन्दोलन हिंसक होते जा रहे हैं, सार्वजनिक व निजी सम्पत्ति को नुकसान हो रहा है। 'इस्टीट्यूट फॉर इकोनोमिक एण्ड पीस' नामक संस्थान ने कई देशों के आन्दोलनों का अध्ययन करने के बाद स्पष्ट किया कि भारत की अर्थव्यवस्था को आन्दोलनों के कारण 2017 में 1190 अरब डालर का नुकसान हुआ। अतः प्रश्न उठता है इसके लिए जिम्मेदार कौन है? हमारी संस्कृति-संस्कार कहाँ गुम हो गई?

हमारे संविधान में वर्णित अपने कर्त्तव्यों के प्रति हमारा क्यों अलगाव हो गया? हमारी सोच क्यों कुण्ठित हो गई? प्रत्येक व्यक्ति में संवेदनशीलता महत्त्वपूर्ण गुण है। परन्तु उसके नष्ट होने के साथ साथ हमारा विवेक व स्वतंत्र चिंतन क्यों नष्ट हो गया? हमारा संविधान है, उसमें मूल अधिकार व मूल कर्त्तव्यों का वर्णन है परन्तु हम इनके प्रति भी विमुख क्यों हो गये? इसलिए आज सम्पूर्ण देश में संस्कारों के साथ-साथ सामाजिक, पारिवारिक व राष्ट्रीय दायित्वों पर चर्चा होती रहती है। यह होना स्वाभाविक भी है क्योंकि वैश्विक परिदृश्य का प्रभाव भारतीय संस्कृति व

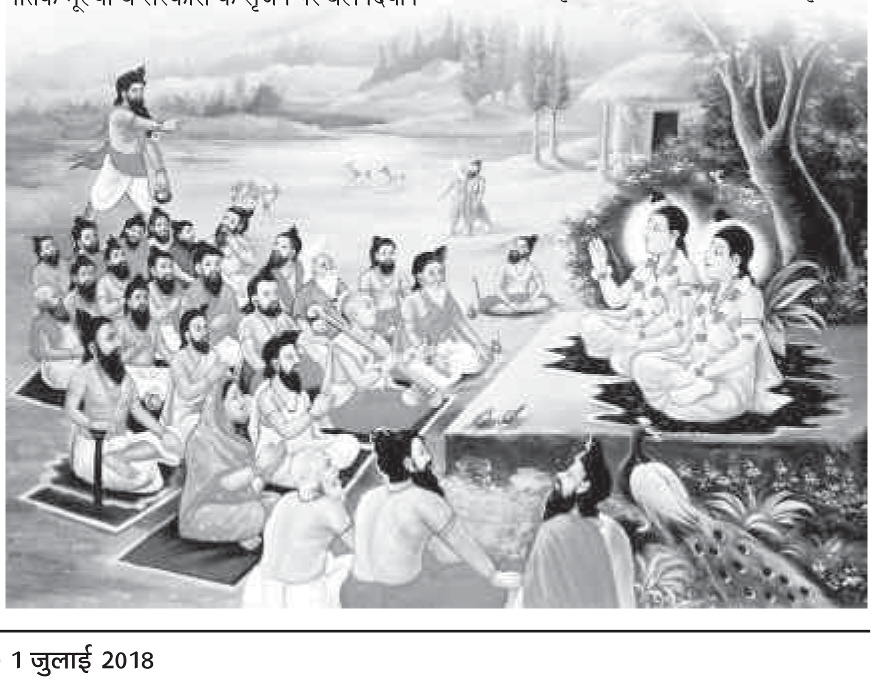

संस्कारों पर भी पड़ा है हमने भारतीय जीवन परम्परा को त्याग कर पाश्चात्य जीवन शैली को अपना लिया है या हमने भारतीय चिंतन को आत्मसात न कर, विचारों के प्रवाह को अनवरत नहीं रखा, हमारे धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित सात्विक विचारों को जन-जन तक सम्प्रेषित नहीं किया? अत: आवश्यकता है कि भारतीय आख्यान परम्परा के आर्ष-महाकाव्य, महाभारत व रामायण जैसी कालजयी कृति को भारतीय राष्ट्रीय व सामाजिक जीवन परम्परा के मूल्य बोध व सांस्कृतिक केन्द्र के आदर्शों को शिक्षा, पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्या के माध्यम से विद्यार्थियों तक पहुँचाना आज के समय में आवश्यक है।

आदिकवि-ऋषि वाल्मीकि से लेकर संत महाकवि तुलसीदास तक रामायण व रामकथा समय-समय पर अनेक भारतीय भाषाओं में रची गई है। तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' की लोक व्याप्ति, श्रद्धा व आस्था की दृष्टि से पिछली चार सदियों से अधिक समय से रामकथा व रामायण अपूर्व रचना के रूप में जन-मानस में मान्य है और पथ-प्रदर्शक के रूप में स्वीकार्य है। संत तुलसीदास की प्रेरणा से उनके शिष्य मेघा भगत ने काशी में 'रामलीला' दर्शन की परम्परा प्रारम्भ की (1625AD) कालान्तर में रामकथा रामायण के साथ ही रामलीला एक महान् परम्परा की नियामक बनी। प्राचीनकाल से ही यह अनुपम प्रस्तुति पवित्र आध्यात्मिक अनुष्ठान के प्रवाह की वाहक बन कर जन-मानस में कर्त्तव्य-परायणता, राष्ट्रीयता, जीवन-मूल्यों का ज्ञान, सामाजिक ताने-बाने के संदेश को प्रसारित करने का प्रयास कर रही है। समाज का हर व्यक्ति जब रामलीला के मंचन का भाग बनकर स्वयं को कृतार्थ अनुभव करता है, दस दिवसीय पावन सान्निध्य में लोक-कल्याण का भाव लेकर प्रस्थान करते हैं, इसी कारण इन आयोजनों से समाज में संस्कारों का सृजन होता है।

रामलीला भगवान राम के जीवन, आदर्शों व शिक्षाओं पर आधारित दस दिवसीय अभिनय द्वारा प्रस्तुति है। रामलीला का मंचन भारतीय उपमहाद्वीप में शरद् नवरात्रि में प्रारम्भ होता है, यह समय पतझड़ के प्रारम्भ होने का संकेत देता है। यह उत्सव विजयादशमी तक चलता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र भारतीय राष्ट्रीय जीवन को नीति शास्त्र के सम्मिश्रण के साथ मानवता का संदेश देता है। उत्तर भारत में रामलीला, रामचरितमानस का अवधी भाषा में रूपान्तर, जो गोस्वामी तुलसी दास ग्रन्थ के रूप में रचित है। यह समाज के सम्पूर्ण सहयोग से समितियों के द्वारा आयोजित किया जाता है। रामलीला को प्रवासी भारतीयों के कारण वैश्विक स्तर पर मान्यता मिली। यूनेस्कों ने रामलीला को 'मानवता की मौखिक व वर्णनातीत श्रेष्ठ कृति' (Masterpiece of the Oral and Intangible Heritage of Humanity, Jump-up to) (Ramlila the Traditional Performance of Ramayan, UNESCO, 2005) बताया। भारत सरकार व बनारस स्थित इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र (IGNCA) ने यूनेस्को के लिए दो घंटे की अवधि की डॉक्युमेंट्री (Documentary) तैयार की, यह भारतीय दर्शन की वैश्विक श्रेष्ठता प्रदर्शित करती है। साम्प्रदायिक सद्भाव को दर्शाती रामलीला का एक प्रदर्शन सन् 1972 में लखनऊ से 20 कि. मी. दूर बक्शी का तालाब पर आयोजित किया गया। जिसमें प्रमुख किरदार मुस्लिम युवकों द्वारा निभाया गया (Rediff.com Oct. 5,2008) इसे रेडियो प्ले के रूप में 'उस गाँव की रामलीला' के शीर्षक द्वारा लखनऊ आकाशवाणी द्वारा प्रसारित करने पर, साम्प्रदायिक सद्भाव पुरस्कार (2000) प्रदान किया गया।

रामलीला का मंचन देश में विभिन्न प्रकार से होता है। उत्तर प्रदेश के वाराणसी में रामनगर में मूक-अभिनय कथाओं पर आधारित नाटक व झाँकियों के द्वारा रामलीला की शिक्षाओं को प्रचारित किया जाता था। बनारस में झाँकियाँ एवं जुलूस के रूप में, समाज के सहयोग से आयोजित किये जाते हैं। यूनेस्कों की रिपोर्ट (2006) के अनुसार अयोध्या, रामनगरी-वाराणसी, वृन्दावन, अल्मोड़ा, सतना व मधुबनी की रामलीला का प्रमुख स्थान है। इसमें प्रभावकारी शैली में क्षेत्र-विशेष की परम्परानुसार स्थानीय लोग सह-गान व खड़ी बोली के द्वारा सम्पूर्ण राम-दर्शन का मंचन करते हैं। भावुकतापूर्ण प्रस्तुति का सभी वर्गों पर प्रभाव पड़ता है। राष्ट्रीय राजधानी की रामलीला को सबसे पुराना माना जाता है। यह रामलीला ऐतिहासिक लाल-किला के बाहर रामलीला मैदान में आयोजित होती है। 2004 में लव-कुश रामलीला समिति ने इसका आयोजन किया था व साधना दूरदर्शन ने 100 से अधिक देशों में इसे प्रसारित किया था। (Sify.com.Oct. 14,2004) हिमाचल प्रदेश के जयसिंहपुर में 90 वर्षों से रामलीला का आयोजन स्थानीय अवधी समुदाय द्वारा होता है। उत्तर-प्रदेश के रामनगर (बनारस) में इसका आयोजन महाराजा उदित नारायण सिंह द्वारा कराया जाता था। (Mitra, Swati (2002), Good Earth Varanasi, City guide, Eicher Goodearth Ltd.) रामनगर की बनारसी रामलीला के लिए स्थायी रचना का निर्माण किया जाता है। साथ ही अस्थाई ढाँचा जैसे अशोक वाटिका, जनकपुरी, पंचवटी व लंका का निर्माण किया जाता है, सम्पूर्ण शहर में प्रसन्नता का वातावरण बन जाता। स्थानीय कलाकारों का चयन किया जाता है। महत्त्वपूर्ण किरदारों के लिए पुराने एवं परम्परागत परिवारों के कलाकारों द्वारा हनुमान, जटायु, जनक आदि की भूमिका (अभिनय) अदा की जाती है। (The Performance in Ramnagar, University of North Texas) सम्पूर्ण अवधि के दौरान 'रामायणियों' के द्वारा निगरानी रखी जाती थी। इस रामलीला में काशी नरेश का सम्पूर्ण सहयोग रहता है।

उपर्युक्त परिदृश्य यह प्रदर्शित करता है कि संस्कारों की अगली पीढ़ी में सम्प्रेषण का आर्ष महाकाव्यों द्वारा सर्वोत्तम प्रयास होता है। वैश्विक स्तर पर भी रामलीला की

प्रासंगिकता है। क्योंकि जब रामलीला का जुलूस समाज के साथ साक्षात्कार करता हुआ अपने कार्य स्थल पर पहुँचता है, तब समाज के लोग कलाकारों का स्वागत करते हैं। स्थानीय कलाकारों को अभिनय के लिए चुना जाता है। समाज का हर व्यक्ति यथा-योग्य आर्थिक सहयोग प्रदान कर अपने को कृतार्थ अनुभव करता है। जब बालक रामायण के पद्यों को सहगान के रूप में गाते हैं, तब सामूहिकता के साथ-साथ आपसी सहयोग व समन्वय के भाव जाग्रत होते हैं। सामाजिक समूह बनकर घर-घर सम्पर्क कर सहयोग प्राप्त करते हैं। यह सहकारिता व निजी सार्वजनिक सहयोग का उत्तम अवयव है। आज विश्व के कई देशों में रामायण को पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्चा का महत्त्वपूर्ण भाग बना रहे हैं।

वहीं दूसरी ओर तथाकथित बुद्धिजीवी इसे दूसरे रंग में रंगने का प्रयास करते हैं। आज भी बालक जब रामायण के छंदों को कंठस्थ करता है वह लगातार उसका अभ्यास करता है, उस स्थिति में उसके मन में भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मान के भाव जाग्रत होते हैं। वह आजीवन आदर्श जीवन जीने का प्रयास करता है क्योंकि बाल्यकाल में बालक जो सीखता है, अभ्यास करता है, उसका उसके मानस-पटल पर अमिट प्रभाव रहता है। विभिन्न शोधों से अध्यंकन (Imprenting) का महत्त्व भी प्रतिपादित होता है। इस समय बालक सबसे अधिक सीखता है जिसे समीक्षात्मक अवधि (Critical Period) कहते हैं। यह अवधि उसके विकसित होते मस्तिष्क पर दूरगामी प्रभाव डालती है। मनोवैज्ञानिक बुलेटिन के अनुसार (Psychological Bulletin, Vol (3) May 2005) जीव-आनुवांशिकता (genetic interitance), जन्मजात (congenital) गुण लक्षणों, सांस्कृतिक संदर्भ (Cultural Context) तथा पैतृक क्रियाओं का परिणाम होता है। अब उद्विकासीय पारिस्थितिकी (evolutionary ecology) ने एक और भागीदारी की ओर संकेत दिया है वह है – एपीजीनीय आनुवांशिकी (epigenetic inheritance) अर्थात् जीन से हटकर आनुवांशिकी, जो कि जीनीय-अभिव्यक्ति पर प्रभाव डालती है। इससे बच्चों का व्यवहार परिवर्तित होती परिस्थितियों में अपने पैतृकों जैसा हो जाता है जबकि बच्चों ने ऐसा व्यवहार पहले अनुभव नहीं किया। मानसिक सोच व सामान्य व्यवहार आदि उसी का परिणाम है। अत: रामलीला में बच्चों की सहभागिता उनके भविष्य के व्यक्तित्व पर सकारात्मक व रचनात्मक प्रभाव डालती है। इसी के आधार पर बालक विकास के पथ पर अग्रसर होकर मानवता के प्रति व कर्त्तव्य की ओर चलकर समग्र व सक्षम समाज की रचना कर सकता है। उपरोक्त कथन को बल मिलता है जब एनबीटी दशहरा दर्पण (नव भारत टाइम्स, दिल्ली 14 अक्टूबर 2010) के तहत सर्वश्रेष्ठ रामलीला चुनने के लिए आए 'जज' निर्णायक मण्डल इन लीलाओं को देख कर भावविभोर हो गये व कहा कि इनके द्वारा समाज को जोड़ने रखने का संदेश घर-घर पहुँच रहा है। नृत्य-गुरु जितेन्द्र महाराज ने कहा था कि ये भारतीय संस्कृति की धरोहरों को संरक्षित करती हैं। उन्होंने कहा कि यदि हम युवा पीढ़ी को रामायण पढ़ने के लिए कहें तो उन्हें बड़ी देर से समझ में आयेगा, परन्तु जब इसका मंचन होते देखते हैं तो युवा जल्दी इसे समझ जाते हैं। इससे बालक संस्कारों को ग्रहण करता है। प्रसिद्ध नृत्यांगना नलिनी-कमलिनी ने कहा है कि लीलाओं के माध्यम से संबंधों की मर्यादा को निभाने का संदेश मिलता है। परम्पराओं का निर्वहन करना ही युवा-पीढ़ी सीखती है। आज तनाव-प्रबन्धन (Stress management) पर चर्चा व संगोष्ठियाँ होती हैं, जबकि हम इन लीलाओं से स्वत: ही तनाव मुक्त हो सकते हैं।

रंगकर्मी-वाणी त्रिपाठी के अनुसार-हमारे देश में कथा-वाचन की परम्परा अब तक जीवित है। वस्तुत: यह आस्था का प्रश्न है। इसी से संस्कारों की सरिता गतिमान होती है। रंगकर्म को रामलीला ने ही जीवित रखा है। रामलीला हमारी संस्कृति और सभ्यता का जीवंत उदाहरण है। रामलीला के कलाकारों को उनकी प्रतिभा का सम्मान मिलना चाहिए। ये सभी हमारी सांस्कृतिक धरोहर को गतिमान बना रहे हैं। इसी से संस्कारों का निर्माण होता है, तभी संस्कारों से युक्त युवा समाज व राष्ट्र बनेगा। आज हम संकल्प लें कि इस परम्परा के प्रवाह में हमारा भी योगदान हो सके व राष्ट्रीय जीवन में प्रवाहित होने वाले 'एकत्त्व' में सभी का सहयोग हो तभी संस्कारों का अनवरत प्रवाह होगा। ❑

(विभागाध्यक्ष-पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर, छ.ग.)

केशव विद्यापीठ समिति

जामडोली, जयपुर 0141-2680344

Email Id- kvpsoffice1992@gmail.com, web-www.keshavvidyapeeth.com

30 वर्षों से शिक्षा- सेवा के माध्यम से शाश्वत जीवन मूल्यों द्वारा व्यक्ति निर्माण हेतु समर्पित संस्थान केशव विद्यापीठ की स्थापना राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालक डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार की पुण्य स्मृति में उनकी जन्मशती के अवसर पर 18 मार्च, 1998 को जयपुर से 10 कि.मी. दूर की गई। हमारा लक्ष्य शिक्षा के माध्यम से शाश्वत मूल्यों की स्थापना कर युवा पीढ़ी को आत्मनिर्भर बनाना एवं समाज को राष्ट्र कार्य हेतु प्रेरित करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न संस्थानों का संचालन हो रहा है। केन्द्रीय समिति के मार्गदर्शन में विभिन्न संस्थानों की प्रबंध समितियाँ अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु प्रयासरत हैं।

केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर, कार्यकारिणी समिति (2018-2021)

संरक्षक : श्री रामलक्ष्मण गुप्ता — अध्यक्ष : प्रो. जे.पी. सिंघल

सचिव : श्री ओमप्रकाश गुप्ता — उपाध्यक्ष : श्री घनश्याम लाल राव

कोषाध्यक्ष : सी.ए. शंकर लाल अग्रवाल

सदस्य : श्री नरेश सौंखिया, श्री अशोक डीडवानिया, श्री नीरज कुमावत

सहवरिता सदस्य : श्री राम मोहन गर्ग, श्री प्रदीप सिंह चौहान, श्री अजीत मांडन, श्री ओमप्रकाश बैरवा

पदेन सदस्य : श्री शिव प्रसाद, श्री रामेश्वर खण्डेवाल, श्री सुरेश कुमार वधवा, श्री भरतराम कुम्हार

स्थाई आमंत्रित : श्री दुर्गादास जी, श्री निम्बाराम जी, श्री प्रकाश चन्द्र जी, डॉ. शैलेन्द्र जी एवं केशव विद्यापीठ समिति द्वारा संचालित विभिन्न संस्थाओं के अध्यक्ष, मंत्री, विश्वविद्यालय प्रतिनिधि, जिला शिक्षा अधिकारी, जयपुर।

शंकर लाल धानुका उच्च माध्यमिक आदर्श विद्या मंदिर ☎2680932

अध्यक्ष : श्री बाबूलाल गुप्ता — मंत्री : श्री नन्द सिंह नरूका

कक्षा 6से 12 तक विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय का पूर्ण आवासीय विद्यालय जहाँ गुरुकुल पद्धति पर आधारित आधुनिक शिक्षा एवं संस्कार युक्त स्वस्थ वातावरण द्वारा बालक का सम्पूर्ण विकास किया जाता है। ज्ञान, कौशल, शारीरिक दक्षता, भाषा, कला, कॅरियर मार्गदर्शन द्वारा बालक को विश्वस्तरीय स्पर्धा के योग्य बनाया जाता है। प्रतियोगी परीक्षा हेतु तैयारी की व्यवस्था है।

दामोदर दास डालमिया उच्च माध्यमिक आदर्श विद्या मंदिर ☎2680439

अध्यक्ष : श्री सुरेश उपाध्याय — मंत्री : श्री ओम प्रकाश शर्मा

आधुनिक शिशुवाटिका से कक्षा 12वीं तक का अनिवासीय विद्यालय

ब्रह्मचारी श्री रामानुजाचार्य कन्या उच्च माध्यमिक विद्यालय ☎2680455

अध्यक्ष : श्रीमती आशा गोलछा — मंत्री : श्री एन.एल. सुमन

कक्षा 3 से 12 तक कला, वाणिज्य एवं विज्ञान संकाय का श्रेष्ठ कन्या विद्यालय

कृष्णा ग्लोबल स्कूल

अध्यक्ष : श्री सुनील सिंघल — मंत्री : श्री अमित झालानी

Play Group Class V-An English Medium Co-Education School

देवीदत्त डालमिया शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय ☎2680076

अध्यक्ष : श्री सुरेश बंसल

संस्कारयुक्त शारीरिक शिक्षा हेतु देश का श्रेष्ठ संसथान

श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय सी.टी.ई. ☎2680466

अध्यक्ष : श्री रामकरण शर्मा — मंत्री : श्री सूर्यनारायण सैनी

श्रेष्ठ शिक्षक निर्माण एवं शोध कार्य में देश का प्रमुख संस्थान

भगवानलाल रामलाल रावत इण्डोस्विच चैरिटेबल ट्रस्ट अस्पताल ☎2680209

अध्यक्ष : डॉ. संदीप जुनेजा — मंत्री : श्री गिरीश चतुर्वेदी

नर सेवा-नारायण सेवा के भाव से सेवारत

गुण-कर्म पर आधारित है - वर्ण भेद

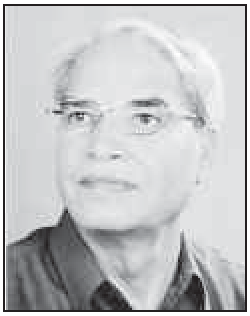

वर्ण भेद व भिन्नता समाज के लिए अनंत होने के साथ साथ नैसर्गिक व हितकारी भी है। इस रहस्य को समझना आवश्यक है। यदि गुलाब के फूल को हम मोगरे या गेंदे का फूल बनाना चाहे या सदाबहार के फूल को चमेली का फूल बनाना चाहे तो यह संभव नहीं है। कोशिश भी करेंगे तो वह अपनी वैयक्तिता खो देगा और अन्य बन भी नहीं पायेगा। अतः गुण-कर्म पर आधारित वर्ण भेद वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित हैं। कुछ स्वार्थी एवं भ्रमित तत्त्व सवर्णों को मनुवादी कह कर भले ही उन्हें गाली देते हों लेकिन मनु ने मनुस्मृति (अध्याय 10, श्लोक 83) में यह स्पष्ट कहा है -

शूद्रो ब्राह्मण तामेति
ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम।
क्षत्रियाज्जात मेवं तु
विद्याद्वैश्याचथैव च।।

❑ **मुरलीधर वैष्णव**

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र - ये चारों वर्ण, जन्म पर आधारित होने की भ्रांति हजारों सालों से फैलाई जा रही है। प्रारम्भ में तथाकथित उच्च वर्ण वालों ने अपना प्रभुत्व और शोषण जारी रखने के लिए छुआछूत और जाति-पाँति को प्रचारित किया तो वर्तमान में दलित विमर्श और दलित आंदोलन के नाम पर पिछड़ा और अनुसूचित जाति-जनजाति वर्ग भी इस भ्रामक बवाल को तरह-तरह से हवा दे रहा है।

श्रीकृष्ण ने गीता (अध्याय 4 श्लोक 14) में यह स्पष्ट कहा है कि यह वर्ण भेद जन्मगत नहीं, अपितु मनुष्य के गुण-कर्मानुसार निर्धारित किया है -

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।

अर्थात् मेरे द्वारा गुणों एवं कर्मों के अनुसार चारों वर्णों की रचना की गई है। इस प्रकार की सृष्टि रचना का कर्त्ता होने पर भी मुझ अविनाशी को तू अकर्त्ता जान।

वक्त की करवट के साथ जाति, पाँति और छुआछूत में कुछ कमी अवश्य आई है लेकिन आज भी शायद ही कोई यह मानने को तैयार होगा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जन्म से न होकर गुण-कर्म के आधार पर कहलाए जाते हों। लेकिन इस भ्रांति और बवाल के लिए हम ही उत्तरदायी हैं, न कि हमारे वेद, गीता, मनुस्मृति आदि जैसे पवित्र ग्रंथ।

कृष्ण ने गीता के उपर्युक्त श्लोक में जो गुण-कर्म के आधार पर वर्णभेद की बात कही वह उनका वैज्ञानिक चिंतन है। गुण मनुष्य की भीतरी क्षमता है जबकि कर्म उस गुण की बाहरी अभिव्यक्ति का प्रकटीकरण है। मनुष्य में गुण बीज की तरह प्रच्छन्न है जबकि कर्म तद्नुरूप पौधे या वृक्ष के रूप में प्रकट अस्तित्व है। मनुष्य-मनुष्य में गुण-कर्म का भेद व वैविध्य सदा से रहा है और आगे भी रहेगा। हम चाहे जैसे साम्यवादी या रामराज्य आधारित समाज का निर्माण कर लें, हम इस भेद को कभी नहीं मिटा सकते। शायद मिटा पाना समाज के हित में भी नहीं है। कुछ लोगों में सत्व गुण सर्वाधिक होता है। उनकी ऊर्जा सदा ज्ञान की ओर बहती है। नेक और जिज्ञासु होते हैं, वे ही ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी हैं। सत्व

मिश्रित रजोगुण वाले क्षत्रिय सदा शक्ति के पूजक होते हैं। वे शौर्य और तेज के धनी होते हैं। इसी संदर्भ में तो कृष्ण ने अर्जुन को कायरता त्याग कर अपने क्षत्रिय स्वभाव (गुण-कर्म) के अनुसार युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। रजो मिश्रिम तमोगुण प्रधानता वालों को शूद्र कहा गया। दूसरे शब्दों में ब्राह्मण को ज्ञान, क्षत्रिय को शक्ति, वैश्य को कृषि व्यापार और शूद्र को श्रम-सेवा से जोड़ा गया। लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि यदि कोई पिछड़ी जाति के परिवार में जन्मा है तो वह पुरुषार्थ से गुण कर्म का विकास कर ब्राह्मण नहीं कहला सकता। यदि ऐसा होता तो शबरी भीलनी होकर और कबीर जुलाहा होकर भी आज पूज्य व संत शिरोमणि नहीं कहलाते।

कृष्ण का यह वर्ण भेद उच्चता की दृष्टि से लम्बवत प्रकृति का (vertical) नहीं है। यह समानांतर (horizontal) है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक वर्ण का समाज में समान महत्त्व है। कल्पना के लिए यदि सभी केवल ज्ञानी व शिक्षक हो जाय तब उनकी रक्षार्थ क्षत्रिय और समाज में कृषि व्यापार हेतु धन कहाँ से आएगा। और यदि समाज में श्रमिक और सेवक न होंगे तो मजदूरी और सेवा कौन करेगा। चारों वर्णों के लोगों का समाज में अपना महत्त्व है और प्रत्येक वर्ण एक दूसरे का पूरक है। हर वर्ण के ही नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्य की उसकी अनुवांशिकी (जिनेटिक) भिन्नता है। यह कितनी आश्चर्य की बात है आज संसार में जितने मनुष्य हैं या पहले हुए हैं और आगे भी होंगे उन सभी के अंगुष्ठ, अंगुलियों व आँखों की पुतलियाँ भिन्न-भिन्न हैं, थी और सदा होगी। अतः यह वर्ण भेद व भिन्नता समाज के लिए अनंत होने के साथ साथ नैसर्गिक व हितकारी भी है। इस रहस्य को समझना आवश्यक है। यदि गुलाब के फूल को हम मोगरे या गेंदे का फूल बनाना चाहे या सदाबहार के फूल को चमेली का फूल बनाना चाहें तो यह संभव नहीं है। कोशिश भी करेंगे तो वह अपनी वैयक्तिकता खो देगा और अन्य बन भी नहीं पायेगा। अतः गुण-कर्म पर आधारित वर्ण भेद वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित है।

कुछ स्वार्थी एवं भ्रमित तत्त्व सवर्णों को मनुवादी कह कर भले ही उन्हें गाली देते हों लेकिन मनु ने मनुस्मृति (अध्याय 10, श्लोक 83) में यह स्पष्ट कहा है -

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।।

अर्थात् शूद्र ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है अर्थात् गुण कर्मों के अनुसार ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण रहता है तथा जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के गुण वाला हो तो वह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हो जाता है और यदि शूद्र उत्तम गुण कर्म वाला हो तो वह ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य हो जाता है।

इसके अलावा भी मनुस्मृति में 2/117, 4/83, 2/82, 2/62, 2/11 से 14, 1/50, 1/51 आदि श्लोक इसी विचार और भावना को व्यक्त करते हैं।

इसी प्रकार आपस्तम्ब सू0 (1-5 10 व 11) में भी स्पष्ट अंकित है -

''**धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं**
पूर्वं वर्णमापद्यते जाति परिवृत्तैव
अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं
जघन्यं वर्णमापद्यते जाति परिवृत्तैव''

अर्थात् धर्माचरण से निम्न वर्ण अपने से उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे जो जिसके योग्य हो।

स्वयं स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वर्णाश्रम धर्म-विषयक अध्याय में ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा है -

''**वर्णो वृणोतेरिति निरुक्तः**
प्रामाव्याद् वरणीया वरीतुमर्हाः।
गुण कर्माणि च दृष्टवा यथा
योग्यं व्रियन्ते ये ते वर्णाः।।''

अर्थात् गुण कर्मो को देखकर यथायोग्य अधिकार जिसे दिया जाये वह वर्ण है।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में व यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय (पुरुष सूक्त) में भी इसी विचार की हमें पुष्टि मिलती है।

आज के हालात से स्पष्ट है कि नैतिकता विहीन राजनीति ने अधिकतर गुणवत्ता (merit) अर्थात् गुण कर्म को भूलकर वोटों की ओछी राजनीति के कारण आरक्षण जैसे विषय को अनावश्यक विस्तार और महत्त्व देकर संविधान के अनुच्छेद 335 की अनदेखी कर रखी है, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि गुणवत्ता /प्रतिभा (merit) की बलिवेदी पर आरक्षण नहीं दिया जायेगा।

वक्त का तकाजा है कि हम गुण कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था की सच्चाई को जाने और समझे तथा मनुष्य को यथा योग्य उसके गुणावगुण के आधार पर परख कर उसे उचित पदस्थान दें ताकि हम एक आदर्श समाज का निर्माण कर सकें।❑

(पूर्व न्यायाधीश, जोधपुर)

अ.भा.रा. शैक्षिक महासंघ द्वारा प्रतिवर्ष सम्मानित होंगे तीन शिक्षक

हम देशभर से ऐसे तीन शिक्षकों का सम्मान करेंगे, जिन्होंने अपने प्रयास से लोगों के जीवन को बदला है। चाहे वह सामाजिक हो या शिक्षा के क्षेत्र में। इसमें शिक्षकों के चुनाव के लिए हमने 15 आयाम तय किए हैं, जिनके आधार पर शिक्षकों का चयन किया जाएगा। इसमें केजी से लेकर पीजी तक के शिक्षकों को शामिल किया जाएगा। इसके साथ ही सेवानिवृत्त शिक्षक भी इसमें शामिल होंगे। यह बातें अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष और राजस्थान विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. जे.पी. सिंघल ने कही। साथ ही उन्होंने कहा कि यह शिक्षकों के लिए शिक्षकों का सम्मान है, इसलिए इसमें हम सरकार या किसी अन्य संगठन या दानदाता की मदद नहीं लेते। महासंघ में शामिल होने पर शिक्षकों जीवन में एक बार सौ रुपए की राशि ली जाती है, उस राशि से ही हम शिक्षकों का सम्मान करते हैं। इसके लिए शिक्षकों को किसी तरह का अपना नामांकन करने की जरूरत नहीं है, संगठन खुद अपने स्तर से शिक्षकों को चयनित करेगा। इस वर्ष चतुर्थ शिक्षक सम्मान कार्यक्रम इन्दोर में आयोजित होगा

Concept and need of Sanskar

❑ Dr. T. S. Girishkumar

Education – curricula – ought to carry instructions on Sanskriti in our nation. Wiser minds in our nation can collectively make this happen through given time of course. Till such time, each of us can keep at this very same task in our own manner, for example, through our classrooms. It may appear not very significant, but it is not so in reality. Instructions given in classrooms through discussions have far fetching implications when they are powerful, it spreads into the entire society. Each of us can keep at this, and this indeed shall have a long standing and widespread implication.

There is a strong difference between what may be called 'Sanskar' in Bharat and what may be called 'Culture' in Europe. Unfortunately, it had been more than normal for people to use synonyms especially from Sanskrit to English which differ in concepts drastically. Such mistakes of synonyms are plenty to see; translating Swarga as heaven and Naraka as hell are just examples, albeit these concepts differ one another so completely. Hence, before going into ideas of Sanskar, it gets important to unpack the concept of Sanskar in contrast with the concept of culture.

Sanskar and Culture

Prima facie, should one say that culture is refined human existence, at once this gets appealed to what Sanskar is. Sanskar means a complex – complicated phenomenon of refinement, and the very name Sanskar suggests nothing other than this refinement – refined existence itself. The language Sanskrit itself is another example; of refinement: the language was synthetically created from other than existing languages as a refined – purified version to carry knowledge with minimum loss of content.

When one looks at the process and contents of refinement, one can come to know how different culture shall be from what Sanskriti in Bharat is. One can easily speculate the process of refinement towards culture in societies other than Bharat, and at the same time, the process of refinement to Sanskriti in Bharat shall be entirely different.

Sanskriti Sanskar in Bharat is rooted on the Vedopanishadic knowledge tradition, where refinement at once is 'sputikarana'. Possible impurities are eliminated and what may be the purest is retained with enhanced vigour. When the Vedopanishadic knowledge tradition becomes the basis for these, the outcome is naturally the best possible in any imagination. How effective shall be the knowledge from Vedas and Upanishads is also unimaginable. The knowledge from the Vedas is a complete full - knowledge, leaving out nothing from the realm of any knowledge. But then, such knowledge is not available instantly, for, such knowledge can't be given instantly.

It is Maharishi Aurobindo who came out with the book 'Secret of the Vedas' and he tries to decode what had hitherto been enigmatic to public. At the end the Maharishi also suggests that such knowledge can only be obtained through a legitimate teacher – Guru – Acharya. Why is that the Acharya is the most important in such a learning process? Each 'Sukta' of the Vedas can

mean different to different minds, that is, to different people. So, the same Sukta ought to get catered to different students differently with different implications according to the mental – emotional spiritual requirements of differing individuals. We are told of thirty-three crores of gods and goddesses in Bharatiya parampara, and these numbers could well be thirty-three crores of possibilities of human minds, mental requirements, emotional and spiritual requirements. An authentic Acharya is expected to find out from his students about such requirements of any student. This being the ingredients and inner processing of refinement concept of Bharat, one can well imagine the great gulf between the concept of Sanskriti in Bharat and the concept of culture elsewhere.

Why the need of Sanskriti – Culture?

Being sons of Bharat, it may be appropriate for us to discuss upon Sanskriti alone, without confusing it with the European concept of culture. Nonetheless, whether in Europe or in Bharat, civilisation directly imply Sanskriti and culture.On a final analysis, what really distinguishes humans from animal world is human civilisations. Civilised societies are what really human societies are. Thus, in just one sentence one could conclude that civilisation is that what makes human societies. Civilisation directly depends on culture or Sanskriti. The richer the Sanskriti or culture, the further established civilisations become.

In another words, the distinctions between barbarians and human beings is based on civilisation, and civilisation is created by Sanskriti – culture in societies other than Bharat. In Bharat, the process to civilisation had been something like this: firstly, the Vedopanishadic knowledge tradition emerges. The coming of the Vedas, Upanishads and many more texts must have taken a long period of time, how much, we really won't be able to speculate. The impossibility of ascertaining the time of the Vedas primarily comes from the fact that beyond certain point in time, the available scientific knowledge is unable to make precision dating experiments. We can say with almost certainty that Vedas originated during the time of the river Saraswati, during when the river Saraswati was flowing in full vigour. But the time of river Saraswati can't be precisely dated as it falls well outside the dating abilities what are available today.

Let us put it this way, through a considerably long period in time, the Vedopanishadic knowledge tradition evolved engulfing almost every field of knowing. From this knowledge tradition, a Sanskriti evolves which is formidably existing till date. This Sanskriti develops its transcendental dimension to make evolution of Dharma, and various Dharmas. At a mundane plane, the same Sanskriti develops evolution of civilisation. On the other hand, culture in other societies came into existence mostly through speculative instructions given out by intelligent minds. The need of Sanskriti could be summed up into one sentence: Sanskriti is what makes the brute in man a human being.

Sanskriti and education

Given the view that it is Sanskriti that refines callous humans into refined humans, creating Sanskaris becomes imperative for a meaningfully civilised society. Left alone, a man should not turn out to be a brute, and when no force is compelling a

A memorandum given to the Chief Minister of West Bengal

Submission of a Memorandum to the Chief Minister, Govt. of West Bengal for Justice on the mysterious death of Presiding Officer , Late Raj Kumar Roy "Bangiya Sikshak O Sikshakarmi Sangha has submitted a memorandum from 23rd May to 30th May to the Chief Minister of West Bengal through respective District Magistrates , demanding CBI probe to unravel the truth behind the mysterious ghastly death of Asst. Teacher, Raj Kumar Roy who was on duty as Presiding Officer at Itahar , near Raiganj, Uttar Dinajpur district during the recently held Panchayet Election 2018 . The Charter of Demands through 12 point agenda sought for providing adequate security of Teachers and Non- teaching staffs as polling personnel during Elections otherwise disengaging them from Election Duties whatsoever in future, adequate compensation to the deceased's family, withdrawal of all cases against agitating Teachers demanding justice etc. The copies of this memorandum have been sent to the Honourable Prime Minister of India , the Honourable Governor of West Bengal , the Honourable Union Home Minister , the Honourable Human Resource Development Minister , the Chief Election Commissioner of India , the State Election Commissioner of West Bengal ." Unless all the demands are met , our protest - movements would continue , " reiterated the State Secretary of the organisation , Shri. Arup Sengupta .

person to remain disciplined, Sanskriti shall make him disciplined from within itself. This again, is a difference between Sanskriti and culture. Naturally, imparting Sanskriti must be done to continue the meaningful existence of Bharatiya society. Sanskriti gets imparted to generations from more than one source, from the home, from the society, and also largely from Dharma. In olden times, Sanskriti was imparted through education both implicitly and explicitly in ancient Bharatiya education system, but with the Europeanisation of education, that process stopped abruptly.

What is left today with us is families, society and Dharma. But Europeanisation had also affected these three institutions as well; families are getting nuclear where the autochthones of Sanskriti, the grandparents are not present. Race against time has become a phenomenon with earning parents and the next generation is left detached. Things may not be so serious in Hindu joint families, but joint families are giving way for nuclear families more and more in the present time. Dharma still and shall ever be the strongest institution to impart Sanskriti, but materialism in the European sense is creeping in and people find less time for Dharma these days. And the scenario in education is the most appalling, with no efforts seriously taken to impart Sanskriti.

There is one exception in education, and that is learning of the language of Sanskrit. The ones who learn Sanskrit language get automatically informed of Sanskriti, but this is the only exception. Philosophy could have been another exception, but we still teach more European philosophies in our universities.

Education – curricula – ought to carry instructions on Sanskriti in our nation. Wiser minds in our nation can collectively make this happen through given time of course. Till such time, each of us can keep at this very same task in our own manner, for example, through our classrooms. It may appear not very significant, but it is not so in reality. Instructions given in classrooms through discussions have far fetching implications when they are powerful, it spreads into the entire society. Each of us can keep at this, and this indeed shall have a long standing and widespread implication. ❑

(Ex. Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

सहायक प्रोफेसर बनने के लिए पीएच.डी. जरूरी – जावड़ेकर

विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में प्राध्यापकों की नियुक्ति के नियमों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) ने बड़े बदलाव किए हैं। 1 जुलाई 2021 के बाद विश्वविद्यालयों में सहायक प्रोफेसर पद पर नियुक्ति के लिए पीएचडी अनिवार्य होगी। कॉलेजों में सहायक प्रोफेसर पदों पर नियुक्ति के लिए वर्तमान की तरह स्नातकोत्तर के साथ राष्ट्रीय योग्यता परीक्षा (नेट) या पीएचडी होना आवश्यक होगा। ये सभी जानकारी हाल ही में केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने एक प्रेस कांफ्रेंस में दी।

मंत्री ने बताया कि नियमों में बदलाव का मुख्य उद्देश्य उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाना है, इसका दूसरा उद्देश्य अच्छे लोग विश्वविद्यालय और कॉलेजों में प्राध्यापक बनें। उन्होंने बताया कि वर्ष 2010 में नियमों के तहत शिक्षकों को मिलने वाली अतिरिक्त सुविधाएँ अभी भी जारी रहेंगी। नए नियम के तहत प्रदर्शन आधारित मूल्यांकन प्रणाली (पीबीएएस) पर आधारित अकादमिक प्रदर्शन संकेतक (एपीआई) प्रणाली को खत्म करने का निर्णय किया गया है। मंत्री ने बताया कि इस प्रणाली के खत्म होने के बाद कॉलेज के शिक्षकों को शोध करना अनिवार्य नहीं होगा। वह चाहे तो शोध कर सकते हैं लेकिन कोई बंधन नहीं होगा। कॉलेज शिक्षकों से अपेक्षा की जाएगी कि वे अब मन लगाकर छात्रों को पढ़ाए। वहीं विश्वविद्यालय के शिक्षकों को अच्छा पढ़ाने के साथ-साथ छात्रों के साथ मिलकर सामाजिक गतिविधियाँ और शोध भी करना है। एपीआई के स्थान पर आसान शिक्षक मूल्यांकन ग्रेडिंग प्रणाली लाया जा रहा है।

मंत्री ने बताया कि पहली बार कॉलेजों में शिक्षकों को प्रोफेसर के पद पर भी पदोन्नति मिल सकेगी। अभी तक कॉलेजों में सह. प्रो. और सहायक प्रोफेसर ही होते थे। पदोन्नति के लिए पीएचडी को अनिवार्य किया गया है। उन्होंने बताया कि विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर के पद पर एक जुलाई 2021 के बाद पीएचडी धारकों को ही नियुक्ति मिलेगी। इन पदों पर नियुक्ति के लिए अब दुनिया के शीर्ष 500 विश्वविद्यालय/ संस्थानों से पीएचडी करने वाले भारतीय भी योग्य होंगे।

उच्च शिक्षण संस्थानों में नियुक्त होने वाले सभी नए शिक्षकों को एक महीने विशेष प्रशिक्षण दिया जाएगा ताकि वे कक्षा में पढ़ाने, प्रश्न-पत्र बनाने आदि को समझ सकें। जावड़ेकर ने बताया कि पीएचडी करके आने वाले उम्मीदवार को पता नहीं होता कि कैसे पढ़ाना है। इसलिए नए शिक्षक को इसका प्रशिक्षण देना अनिवार्य किया गया है। 'स्वयं' में 1032 पाठ्यक्रम मौजूद हैं। स्वयं पर आने वाले सभी लेक्चर के लिए विश्वविद्यालय और कॉलेजों के शिक्षकों को वेटेज दिया जाएगा जिसका फायदा उन्हें पदोन्नति में मिलेगा। विश्वविद्यालयों में स्वीकृत प्रोफेसर के पदों की संख्या का 10 प्रतिशत वरिष्ठ प्रोफेसर नियुक्त किए जाएँगे। ये नियुक्ति सीधी भर्ती और पदोन्नति से होगी। विश्वविद्यालय खुद से संबद्ध कॉलेजों के शिक्षकों को पीएचडी और एमफिल के छात्रों को सुपरवाइज करने की इजाजत और सुविधा प्रदान करेंगे। इसके अलावा ओलंपिक, एशियाई खेलों और राष्ट्रमंडल खेलों में पदक जीतने वाले खिलाड़ियों को विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में सहायक निदेशक, उप निदेशक, शारीरिक शिक्षक आदि नियुक्त करने के लिए योग्यता में शामिल किया जाएगा।

।।ॐ कं. कल्याणाय नमः ।।

श्री शेषावतार श्री कल्लाजी वेदपीठ एवं शोध संस्थान

कल्याणनगरी (निम्बाहेड़ा)

जिला-चित्तौड़गढ़ (राज.)

Ph. 01477-223225, www.shrikallajivediciuniversity.com email:skvp.peeth@gmail.com

संस्थान द्वारा संचालित गतिविधियां

1. वेदों का अध्ययन, अध्यापन एवं शोध कार्य।

2. विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से राष्ट्र भक्त युवक-यवतियों का निर्माण करना ।

3. भागवत संकाय के माध्यम से बटुकों को भागवत दीक्षित करना ।

4. श्री कल्लाजी वैदिक विश्वविद्यालय की अतिशिघ्र प्रारम्भ करने की योजना। (राज्य सरकार द्वारा विधानसभा में श्री कल्लाजी वैदिक विश्वविद्यालय विधेयक 2018 पारित हो चुका है)।

5. संस्थान द्वारा अब तक 450 वैदिक विद्वान शिक्षा प्राप्त कर चुके है तथा वर्तमान में 120 वैदिक बटुक अध्ययनरत है। जिनको पूर्णतया: नि:शुल्क शिक्षा प्रदान की जाती है जिसका सम्पूर्ण व्यय संस्थान को प्राप्त दान द्वारा किया जाता है।

श्री कल्लाजी वैदिक विश्वविद्यालय हेतु प्रेसिडेंट की नियुक्ति की जानी है विधेयक के नियमानुसार योग्यता रखने वाले विद्वान अपने आवेदन पत्र सीधे अथवा संस्थान को मेल द्वारा प्रेषित कर सकते है।

संस्थान का विदेशी अंशदान अधिनियम के तहत पंजीयन संख्या 125500007 है व एक्सिस बैंक खाता संख्या 910010015723034 है। आयकर अधिनियम 80 जी के तहत नियमानुसार छूट। भारतीय स्टेट बैंक निम्बाहेड़ा खाता सं. 51087054933 है। पक्ष : श्री शेषावतार 1008 कल्लाजी वेदपीठ एवं शोध संस्थान, कमधज नगर, निम्बाहेड़ा

Children both at school and home should first learn moral values and good conduct to shape up their life. Other necessary life skills can be learnt later in life. Often we see people emphasize more on good jobs and good money. But teachers and parents should first give their children that stone of social values and skills for their holistic development. After that, gradually, children should be taught important life skills in sequence, because if a child's brain is filled with the sand of depression in the very beginning, then sadly, there will be no space left for other creative and dynamic skills.

Is Education Really Imparting Cultural Values?

❑ **Prof. Prakash Chandra Agarwal**

In spite of being the most intelligent creature, human nature is just like an animal. Anger, greed, ego are the evils in humans by birth. A person's entire family and his social and educational institutions play a major role in inculcating social skills in them so that they conform to the rules and regulations of the society. Education helps an individual in shaping the way he thinks.

A lot of research is done in the field of education. This is done with a motive of keeping the students, people and society abreast with the best way of leading a good and happy life. It is done so that people would be able to live in harmony and make this Earth a more beautiful place to live in. In spite of all these, we face a lot of things in everyday life which make us think that we need to do a lot in this space. A simple example for that could be people throwing trash everywhere without caring about what harm it can do the environment and eventually to the people. And this is something which is not limited to school education. Some people argue that it is because of the lack of infrastructure which leads to throwing of garbage at random places. But this is a clear example of the lack of good education provided to an individual. And these are becoming a part of culture for many people. They don't even think that whatever they are doing are not good for the society. They are doing these either subconsciously or because they are motivated by self interest.

There are many such examples which is clearly an outcome of lack of good education which leads to the evolvement of these atrocities that our society is facing. Every day we hear about shameful incidents taking place across the country which force us to think what kind of education we are extending to our young generation. Where have the teachings of the Vedas gone? Where are the values and ethics that we have acquired over the years? Do we still possess them or have they gone down the drain?

Let's get back to our school days and recollect the typical story of pieces of rock, sand and pebbles in a jar, but in a different perspective now. The story goes like this. A teacher took a jar of glass

and started throwing some pieces of rock in it till the jar was full. After that he took some pebbles and started pouring them in the jar. All the pebbles were filled in the jar where there was a little space left. After this he began to put some sand in the jar. Now the jar was totally full. Then the teacher asked for water and started pouring water into the jar and the water also settled in the spaces between sand and pebbles. From this story we learnt that we should make wise choices of what all things we should keep within us and in what way. There can be plenty of things inside us. Now it is up to us as to what we want to put first. Just imagine, if the sand was put first in the jar, then could the stones ever pass in it? Never!

Similarly, children both at school and home should first learn moral values and good conduct to shape up their life. Other necessary life skills can be learnt later in life. Often we see people emphasize more on good jobs and good money. But teachers and parents should first give their children that stone of social values and skills for their holistic development. After that, gradually, children should be taught important life skills in sequence, because if a child's brain is filled with the sand of depression in the very beginning, then sadly, there will be no space left for other creative and dynamic skills.

Schools are responsible for teaching not just cognitive skills to the students but also the life skills such as courage, optimism, persistence, perseverance, determination, and so on. Schools should also teach how to be polite and humble, how to spread love and affection, how to be patient at difficult situations. It is a matter of concern that schools aren't focusing on these social skills, because there is so much attention paid to test scores. I believe test scores matter, but they are not the only thing that matters. By focusing so much intensively and extensively on the test scores, schools are missing half of what the kids need to become fully successful person. They are only seeing half the picture of what schools ought to do. With half of the picture, it's like teaching children how to ride a bicycle but sending them out to drive the cycle with the flat tyres.

We all wonder what our world has come to. We all fear what kind of brutal behavior can happen next. But there is no problem that can withstand if we choose to fight back with determination and strong will. We are either part of the solution or part of the problem. It is commonly said that development of any country is largely dependent on its youngh population, and India is an amazingly young country. In fact if we take the age group from 10-19, there are 236 million Indians. This is amazing because this is happening at a time when the rest of the world is ageing. By 2020, average age of Japan is going to be 40, average age of Europe is going to be somewhere around 46, US also 40 and the average age of India will be 29. So, we are potentially the people who are the youthful productive population, ready to work and transform the world. We have the people, but do we have the ability to equip the people to take advantage of this? With the availability of this youth population there are two possibilities: to get it right or to get it wrong. If we get it right, we educate and train them, we transform the economy and our society but if we get it wrong, the demographical dividend becomes the demographical disaster. To save the country from facing the disaster, we have our schools and teachers at the rescue. Well, teachers should get our kids not just to have their heads full of facts and formulas or textbook materials or teachers' lecture, because all these give only a well educated mind and not a well formed mind. A well formed mind, a mind that reacts to unfamiliarity, a mind that can react to bigger examination called life. A mind that doesn't only ask the teacher Why but also Why not. If this young population is taught well, they can fight back the evils of the society and help our country move forward. Schools get to teach our children, not just "How to cross the road", but also "How to keep that road clean."

Schools in link with the society should come together to fight with the societal evil which has overshadowed the goodness at its first place. Working together in harmony and bringing out the best in man, we can establish a new ideal place of peace, make our lives beautiful, and take the country ahead. It sounds so easy to say and listen to, but it seems like a dream, keeping in mind today's circumstances, it seems like a bit of awe, but still nothing is impossible!❑

(Principal, Regional Institute of Education, Odisha)

Half of the present population born in post independent India in an average age bracket of 25-30 years has been impressed upon that education and modernization have been somehow associated with European travellers, missionaries and the British occupation of this country. Not many are aware that the indigenous primary education of India was robust, functional and had a wide network. This has been well documented by none other but the British themselves.

Skewed Portrayal of Indigenous Knowledge System

❑ Dr. Geeta Bhatt

Half of the present population born in post independent India in an average age bracket of 25-30 years has been impressed upon that education and modernization have been somehow associated with European travellers, missionaries and the British occupation of this country. Not many are aware that the indigenous primary education of India was robust, functional and had a wide network. This has been well documented by none other but the British themselves.

Shri Dharampal in his book 'The Beautiful Tree' writes that Mahatma Gandhi had contested the epistemic of British superiority on us vis-a vis our schooling system. In 1931, while attending the Round Table Conference at Chatham House, London; Gandhi said " I say without fear of my figures being challenged successfully, that today India is more illiterate than it was fifty or a hundred years ago, and so is Burma, because the British administrators, when they came to India, instead of taking hold of things as they were, began to root them out. They scratched the soil and began to look at the root, and left the root like that, and the beautiful tree perished".William Adam, a Scottish missionary did an extensive survey and published a report on vernacular education in Bengal and Bihar submitted to the British Government in the year 1835, 1836 and 1838.Adam reported that nearly one lakh villages in Bengal and Bihar had elementary schools. Detailed statistics in the data collected between 1822-25 by British District Collectors showed that these schools had pupil representation from all castes. Madras Presidency data shows that a substantial number of dalit students attended school. G.W. Leitner, the founder of Government College, Lahore in his publication 'Indigenous Education in the Punjab in 1882 wrote that the Punjab had an estimated 3,30,000 pupils learning "all the sciences in Arabic and Sanskrit schools and colleges, as well as Oriental

literature, Oriental law, Logic, Philosophy and Medicine taught to the highest standard". He writes that there is not a mosque, a temple, a dharmsala that did not have a school attached to it. The Punjab was way ahead of many European nations in literacy. However, after the mutiny of 1857, the British systematically destroyed the native education system on the pretext of crushing the rebellion. Leitner states that after the mutiny, by 1880, just 1,90,000 pupils were left in native schools.

In the Charter of 1813 passed by the British Parliament, constitutional position of British Indian territories was defined. It renewed the contract of the East India Company and introduced a clause for the revival and improvement of literature in India while contemplating to own up the responsibility of education of their subjects and promotion of knowledge of sciences.An amount of Rs one Lakh was decided to be kept aside every year for the same purpose. This amount was to be earned by the taxes which had been permitted and introduced in the same Charter to be levied by empowering the local governments on the people subject to the jurisdiction of the Supreme Court. There was not much clarity among the British officers regarding the execution of the endowment and the allotted grant was only partially spent. However, in the Charter of 1813 the British also passed a clause which allowed the missionaries to work in the territories of the Company for the education and proselytization of the people in India. A road map was being set to neglect the indigenous institutions.

Thomas Macaulay was instrumental in convincing the House of Commons in his infamous 'Minute on Education' speech in 1835 about the intrinsic superiority of the Western literature over Arabic and Sanskrit works. He categorically favoured the mode of education as English for Queen's Indian subjects and labelled Indian science as absurd. He campaigned for using the financial assistance set in Charter of 1813 for promotion of education exclusively for English medium literature. Colonization of education in the garb of 'modern' was intended and executed as it served the purpose of producing brown Englishmen and subsequent decline of traditional knowledge base.

It is rather ironical that while Macaulay ridiculed the traditional knowledge and culture of our land, the concept of National schooling in England and many other European countries was inspired by Indian way of practice of 'monitor', 'slate' and 'group study'. Dr Andrew Bell who was a chaplain in British Army came to Madras in 1787. During his stay, he observed local boys learning alphabets by drawing on the sand from those who were brighter in the class. He developed this technique as "New Schooling System" and implemented it in England. This became very popular and was adopted by other European countries. Known as the 'Madras Monitorial system", this was an economical alternative for mass education. Dr. Bell opened a college in Scotland and named it as "Madras College". One of his pupils Mr. Lancaster also promoted the same concept and it was famously known as "Bell and Lancaster model". However, none of them gave credit to Indian traditional schooling which had inspired them.

Brigadier-General Alexander Walker's testimony who served the British in India between 1780 and 1810 on education in the Malabar area stated: "The children are instructed without violence and by a process peculiarly simple. The system was borrowed from the Brahmans and brought from India to Europe. It has been made the foundation of National Schools in every enlightened country. Some gratitude is due to a people from whom we have learnt to diffuse among the lower ranks of society instruction by one of the most unerring and economical methods which has ever been invented". Walker stated that "no people probably appreciate more justly the importance of instruction than the Hindus".

The contemporary knowledge eco system has evolved after centuries of experimentation and cross-cultural exchange of information and education models. One cannot demolish the argument that the invention of the steam engine accelerated the industrialization and established the hegemony of the British across the globe. However, undermining the indigenous knowledge and skill of the natives and appropriating it to suit their ulterior motives dented the foundation which was required to strengthen our national consciousness. ❑

(Associate Professor and Member of Academic Council, University of Delhi)

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

जुगल किशोर चड्ढ़ा

बी.एन. 35, पूर्वी शालीमार बाग, दिल्ली-110058

दूरभाष : 9310005074

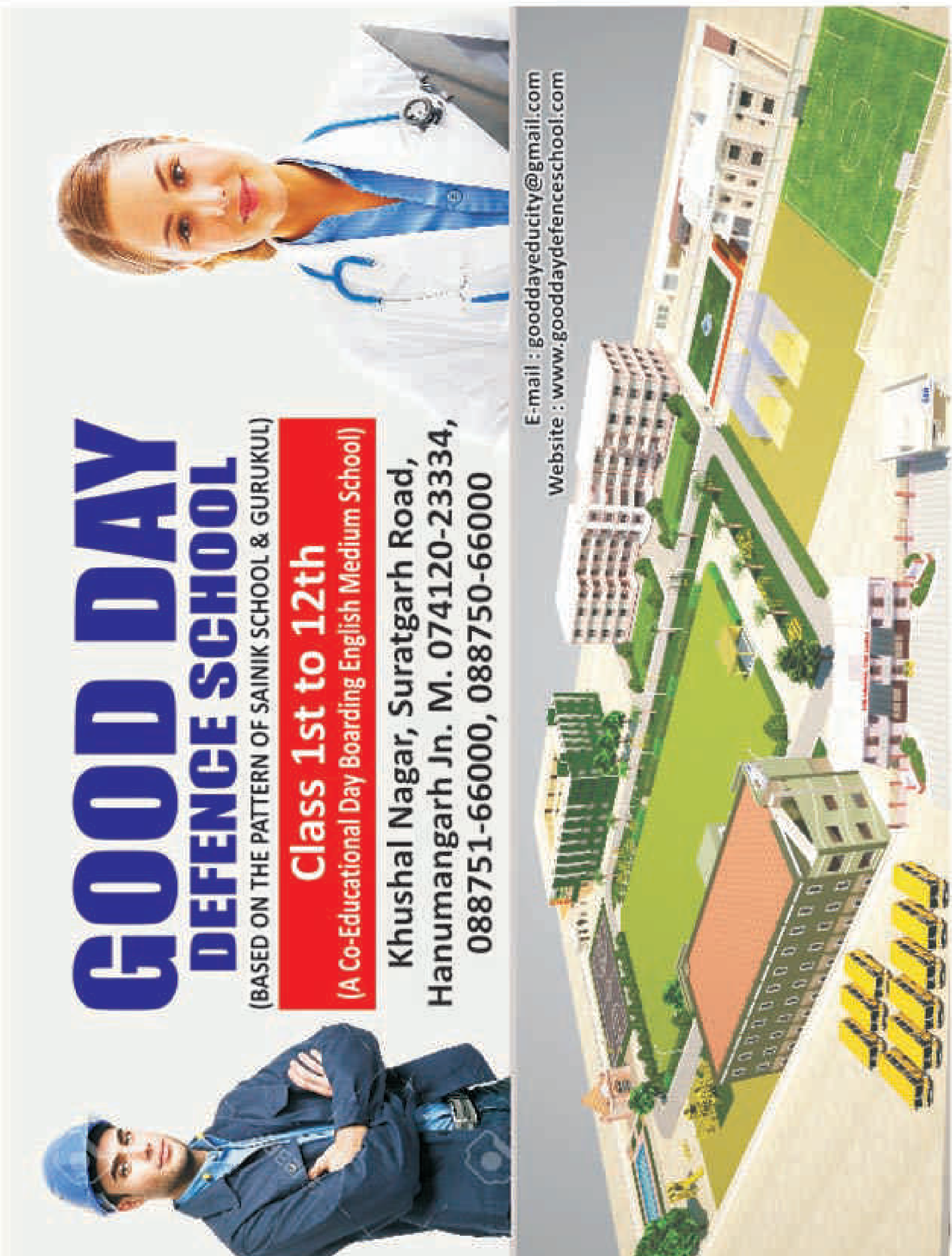
GOOD DAY
DEFENCE SCHOOL
(BASED ON THE PATTERN OF SAINIK SCHOOL & GURUKUL)
Class 1st to 12th
(A Co-Educational Day Boarding English Medium School)
Khushal Nagar, Suratgarh Road,
Hanumangarh Jn. M. 074120-23334,
088751-66000, 088750-66000
E-mail : gooddayeducity@gmail.com
Website : www.gooddaydefenceschool.com

बोकारो के सरस्वती विद्या मंदिर में राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के प्रदेश प्रतिनिधि सम्मेलन को संबोधित करते हुए राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर

जातियतावादी अध्यापक ओ गवेषक संघ की प्रदेश कार्यकारिणी बैठक कोलकाता के आशुतोष मुखर्जी मेमोरियल हाल में सम्पन्न

बंगीय नव उन्मेष प्राथमिक शिक्षक संघ, प. बंगाल की कोलकाता में आयोजित टोली बैठक में सम्मिलित कार्यकर्ता बन्धु।

त्रिपुरा राज्य महाविद्यालय शैक्षिक संघ की बैठक में इकाई गठन की योजना के लिए सदस्यता अभियान पर चर्चा

त्रिपुरा विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ,अगरतला की परिचयात्मक बैठक में सदस्यता एवं आगामी कार्ययोजना पर चर्चा।

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ के प्रदेश अध्यक्ष स्व. श्री रजनीश चौधरी के बी.आर.सी. कार्यालय शाहपुर (कांगड़ा) में आयोजित श्रद्धांजलि कार्यक्रम

Your Family's Dental Health is Priceless !!
MAC DENTAL CARE
You Smile, We Smile
We do Dentistry Easy, Comfortable and Affordable
Why Choose us ?
Serving you with Compassion and honesty.
10 Years of Clinical Experience.
Leading Edge Dentistry with personal touch.
Strict International Standards of Sterilization & hygiene protocol.
Creating a painless and positive experience for our patients.
Service Offered
Pain Less RCT
Crowns
Restoration
Orthodontic Treatment
Invisible Braces
Dental Implants
Veneers & Laminates
Dentures
Scaling & Polishing
Teeth Whitening
Tooth Extractions
Oral Surgical Procedures
Dr. Mayank Mukhi
B.D.S., MDS Orthodontics
(BRACES Specialist)
Consultant Orthodontist and Cosmetic Dental Surgeon
+91-9873473131
Clinic Hours :
9:30 am to 1:30 pm
4:30 pm to 8:30 pm
Call Us :
011- 27480888
Dr. Jyotika Mukhi
B.D.S. (Gold Medalist),
PG.C.O.I. (IGNOU)
Root Canal Specialist and Implantologist
+91-9654228551
BW-8A, Shalimar Bagh, Delhi-110088 | macdentalcare@gmail.com

GOOD DAY DEFENCE SCHOOL

(BASED ON THE PATTERN OF SAINIK SCHOOL & GURUKUL)

Class 1st to 12th (A Co-Educational Day Boarding English Medium School)

Khushal Nagar, Suratgarh Road, Hanumangarh Jn. (Raj.)

74120-23334, 088751-66000, 088750-66000

श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय (सी.टी.ई.)
केशव विद्यापीठ जामडोली, जयपुर, नैक ग्रेड- A
केन्द्र प्रवर्तित योजनान्तर्गत भारत सरकार से क्रमो. संस्थान

दूरभाष : 0141-2680466 (कार्यालय) , 0141-2681583 (प्राचार्य)
वेबसाइट : www.shriagrasenpgttcollegecte.com, ई-मेल : ctejamdoli@gmail.com

संस्था अन्तर्गत संचालित विभिन्न पाठ्यक्रम

- यू.जी.सी. द्वारा स्वीकृत एवं राजस्थान विश्वविद्यालय से संबद्ध
  दीनदयाल उपाध्याय कौशल केन्द्र के इंटीरियर डेकोरेशन, बिल्डिंग कन्स्ट्रक्शन में डिप्लोमा, डिग्री कोर्स (शिक्षक नि:शुल्क यू.जी.सी. द्वारा, योग्यता : +2 उत्तीर्ण), महाविद्यालय कोड - 1156
- एम.एड. द्वि-वर्षीय पाठ्यक्रम, प्री. एम.एड. महाविद्यालय कोड- 120 प्रवेश प्रक्रिया राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा
- बी.एड. द्वि-वर्षीय पाठ्यक्रम, पी.टी.ई.टी महाविद्यालय कोड -112C033 प्रवेश प्रक्रिया एम.डी.एल. विश्वविद्यालय, अजमेर द्वारा
- चार-वर्षीय इंटीग्रेटेड बी.एससी-बी.एड. एवं बी.ए.-बी.एड. पाठ्यक्रम, पीटीईटी महाविद्यालय कोड - 512023 प्रवेश प्रक्रिया एम.डी.एस. विश्वविद्यालय अजमेर द्वारा
- डी.एल.ई.डी. (बी.एस.टी.सी.) द्वि-वर्षीय पाठ्यक्रम, बी.एस.टी.सी. महाविद्यालय कोड- 349 प्रवेश प्रक्रिया गोविन्द गुरु विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा द्वारा
- केन्द्र प्रवर्तित योजनान्तर्गत सृजित सी.टी.ई. संस्थान
- इग्नू अध्ययन केन्द्र (बी.एड., एम.एड. एम.ए. (शिक्षा) इत्यादि)
- एन.आई.ओ.एस. का डी.एल.ई.डी. अध्ययन केन्द्र
- RKCL का RS-CIT अध्ययन केन्द्र, सर्टिफिकेट वर्धमान महावीर कोटा खुला वि.वि. द्वारा,
  सम्पर्क - 9314405401

संस्था अन्तर्गत उपलब्ध सुविधाएँ

• छात्र एवं छात्राओं हेतु पृथक छात्रावास व्यवस्था • कम्प्यूटर प्रशिक्षण सुविधा • पुस्तकालय सुविधा • शैक्षिक तकनीकी प्रयोगशाला • मनोविज्ञान प्रयोगशाला, विज्ञान प्रयोगशाला • आर्ट एण्ड क्राफ्ट प्रयोगशाला • स्थापन प्रकोष्ठ, परामर्श प्रकोष्ठ, महिला प्रकोष्ठ • शोध एवं प्रकाशन • गणित एवं भाषा प्रयोगशाला • संस्कार केन्द्र

प्रो. जे. पी. सिंघल अध्यक्ष, केशव विद्यापीठ समिति	**श्री ओमप्रकाश गुप्ता** सचिव, केशव विद्यापीठ समिति	**श्री अमरनाथ चंगोत्रा** संयुक्त सचिव, केशव विद्यापीठ समिति
डॉ. रामकरण शर्मा अध्यक्ष	**डॉ. सूर्यनारायण सैनी** मंत्री	**डॉ. मुदित राठौड़** प्राचार्य

धर्म व पन्थ निरपेक्षता

❑ डॉ. रुचि रमेश

जिस प्रकार एक सनातन धर्म में अनेकों मार्ग जैसे- ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग, योग की उपासना मार्ग, निष्काम कर्म योग और परोपकारादि सभी साधन परमार्थ प्राप्ति के लिए है उसी प्रकार सभी पंथ अथवा संप्रदाय भी परम तत्त्व की प्राप्ति के मार्ग हैं। सभी पंथ या सम्प्रदायों का लक्ष्य भी धर्म है। यदि वह हिन्दू हो तो भी दूसरे सम्प्रदाय की धर्मसाधना का क्षेत्र मस्जिद को देखकर कुण्ठित न होगा। यदि कोई मुसलमान या ईसाई पूर्णतः धर्म प्राण है तो वह भी हिन्दू के मन्दिर और तीर्थ को हेय दृष्टि से नहीं देखेगा। परन्तु खेद है कि आज का व्यक्ति इतना सङ्कीर्ण हो गया है सम्प्रदाय भेद के कारण से वह मानवता का अपमान कर रहा है। द्वेषभाव पैदा कर रहा है।

व्यक्ति से समाज, समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं सम्पूर्ण विश्व के धारण, पोषण, संघटन सामञ्जस्य एवं ऐकमत्य का सम्पादन करने वाला एकमात्र पदार्थ है- धर्म। धर्म का लक्षण क्या है इस विषय पर आचार्य कणाद कहते हैं कि जिसके द्वारा इस लोक में (संसार में) और परलोक में कल्याण होता हो वह धर्म है। अर्थात् जो इस संसार में सर्वविध प्रकार से अभ्युदय (उन्नति) और मरणोपरान्त स्वर्ग अथवा मोक्ष प्रदान करे। धर्म शब्द धृञ धारणे धातु से बनता है जिसका अर्थ धारण करना होता है- **धारणाद् धर्ममित्याहुः।** भारत एक धर्म प्रधान देश है। यहाँ धर्म का अर्थ किसी मत, पन्थ या सम्प्रदाय से नहीं है। धर्म का अर्थ है जो धारण करने योग्य है, जिसे धारण किया जा सके, जिसे धारण करने से समाज संगठित होकर सुचारू रूप से चल सके। शास्त्रों में धर्म के दस लक्षण कहे गये हैं जैसे - धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह इत्यादि।

प्राचीन काल से ही भारतीय जीवन पद्धति धर्म के इन्हीं लक्षणों पर आधारित रही है तथा यही धर्म मनुष्य को पशु से अलग करता है। धर्म विहीन मनुष्य को पशु के समान माना गया है - **धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।** तात्पर्य यह है कि धर्म का सम्बन्ध हमारे प्राणों से है, हमारी आत्मा से है। जिस प्रकार शरीर बिना प्राणों और आत्मा से रहित शव (मृत) मात्र है उसी प्रकार मानव भी बिना धर्म से मृतप्राय है, निष्प्राण है। जब जीवन में धर्म का महत्त्व इस प्रकार का रहता है तो हम कह सकते हैं कि धर्म का सम्बन्ध मानव के आन्तरिक जीवन से है जिसमें हम तीन तत्त्वों बुद्धि, भावना और क्रिया का समावेश पाते हैं अर्थात् हम कहते हैं कि धर्म ईश्वर के प्रति व्यक्ति की सम्पूर्ण प्रक्रिया है। धर्म उपासनीय है, आचरणीय है और सेवनीय है। इसलिए जिनके हृदय में राग-द्वेष है वे धर्म के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सकते हैं। जब धर्म के स्वरूप को समझने के लिए शुद्ध अन्तःकरण का होना तथा शुद्ध आचरण होना अनिवार्य है तो तब आज के कलुषित भौतिकवाद का मानव धर्म के स्वरूप को क्या ज्ञात कर पाएगा जो कि राग-द्वेष, छल-छिद्र, अपना-पराया इत्यादि दुर्भावनाओं से ग्रसित है। धर्म तत्त्व को समझने के लिए सर्वप्रथम यह लक्षण अवश्यमेव ज्ञात करना होगा-

वेदः स्मृति सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।

वेद, स्मृति, महान पुरुषों का आचार तथा अन्तरात्मा में जिसके कारण सहज प्रसन्नता प्रकट हो, वह आत्मप्रिय कार्य- इस तरह चार प्रकार यह धर्म का साक्षात् लक्षण कहा गया है। आत्मा मन तथा बुद्धि से परे है। आत्मा परमात्मा का रूप है जो किसी से भी द्वेष अथवा शत्रुता नहीं रखती है। इसी कारण से यह लक्षण प्रतिपादित किया है। धर्म ईश्वर का संविधान है और सदा ईश्वर में निवास करता है। इस

संविधान का सम्यक् ज्ञान वेदों में प्रतिपादित है। इसलिए यदि धर्म को अच्छे प्रकार से जानना है तो वेद ही एक मात्र साधन हैं जिन तत्त्वों का विवेचन वेदों में अंश के रूप में प्राप्त होता हो वहाँ स्मृतियों को प्रमाण माना है और महापुरुष भी जिस मार्ग का अनुसरण करते हैं वो भी धर्म कहा गया है।

निरुक्त में 'धर्म' शब्द का अर्थ नियम बताया गया है। किन्तु 'धर्म' शब्द का धातुगत अर्थ तो धारण करना ही होता है। इन दोनों के मेल से धर्म शब्द का यही वास्तविक अर्थ होता है कि जिस नियम ने इस लोक या संसार को धारण कर रखा है, वही धर्म है। इसी धर्म शब्द के पहले 'स्व' जोड़ने से स्वधर्म शब्द बनता है, जिसका अर्थ अपना वर्ण-आश्रम-धर्म होता है। उसी के पहले 'वि' उपसर्ग लगाने से विधर्म शब्द बनता है। उसका अर्थ **विगतः धर्मेण विधर्मः** होता है। जो अपने धर्म से गिर जाय अर्थात् धर्मान्तरित हो जाय वह विधर्म है। उसी धर्म के पहले 'कु' उपसर्ग लगाने से 'कुधर्म' शब्द बनता है। उसका अर्थ-**'कुत्सितः धर्मः कुधर्मः'** अर्थात् जो धर्म निन्दा के योग्य हो, वह 'कुधर्म' है। कुधर्म पापाचरण या बुरे आचरण को कहते हैं। कुधर्म का एक और अर्थ भी है जो आज के युग में बड़ा प्रासंगिक है वह है कि जो अन्य धर्म में बाधा दे, वह 'कुधर्म' कहलाता है- **धर्मः यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्मः तत्।** जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा दे, वह धर्म नहीं है, किन्तु कुधर्म है। जो धर्म समस्त धर्मों का अविरोधी है वही यथार्थ धर्म है। धर्म के पहले नञ् जोड़ने से '**न धर्मः अधर्मः**' अधर्म शब्द बनता है। जिसका अर्थ- जो धर्म से बिल्कुल विपरीत हो, वह अधर्म कहलाता है। दार्शनिक दृष्टि से यह ज्ञात होता है कि जिस कर्म से तमोगुण और रजोगुण की निवृत्ति हो और सत्त्वगुण की वृद्धि हो, वही धर्म-पद-वाच्य कर्म होगा और जिस कर्म से सत्त्वगुण की हानि और रजोगुण तथा तमोगुण की वृद्धि हो, वह अधर्मपद वाच्य कर्म होगा। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के लक्षण श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित हैं।

मानव मात्र के कल्याणार्थ पुरुषार्थ चतुष्ट्य का प्रतिपादन शास्त्रों में वर्णित है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। सर्वप्रथम 'धर्म' है इसके बाद अर्थ और काम है और अन्त में मोक्ष। आज के युग का व्यक्ति केवल अर्थ और काम चाहता है येन केन प्रकारेण। अर्थ और काम का मूल भी धर्म है। धर्मानुकूल अर्थोपार्जन करे अथवा अर्थ का उपयोग भी धर्मार्थ हेतु हो। काम आज के युग का चरमोत्कर्ष है जबकि भगवान कहते हैं मैं वही काम हूँ, जो धर्म के अनुकूल है। धर्मरहित काम जो रावण में मूर्तिमान है और धर्मरहित अर्थ, जो दुर्योधन रूप में मूर्तिमान है कितना नाशकारी है इसकी शिक्षा हमें रामायण और महाभारत से प्राप्त होती है। धर्म का फल है संसार के बन्धनों से मुक्ति। इसीलिए अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष है। धर्म से यदि सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो यह कोई उसकी सफलता नहीं है। धन का फल है एक मात्र धर्म का अनुष्ठान, यदि यह न करके इससे कामोपभोग की कुछ सामग्री संग्रहीत कर ली तो यह श्रेयस्कर नहीं है। धर्म से चित्त शुद्धि होती है और चित्त शुद्धि से कर्मयोग, ध्यान योग, भक्ति योग और ज्ञान योग के मार्ग पर चल सकता है। इन्हीं योगों के अनुसन्धान से भगवत्प्राप्ति संभव है। धर्म ही मनुष्य के जीवन की सभी अवस्थाओं में प्रधान है। इसलिए धर्म के वास्तविक अर्थ का ज्ञान नितान्त आवश्यक होता है।

पंथ अथवा सम्प्रदाय ऋषियों या महापुरुषों द्वारा संचालित है जो व्यक्ति जिस ऋषि के आश्रम में जाकर विद्या अथवा ज्ञानार्जन करता है, वह उसी सम्प्रदाय की शिक्षा पद्धति का विस्तार करता है। उसी पंथ की महिमा का गान करता है। आचार के भेद से ही नाना प्रकार के पंथ अथवा सम्प्रदाय हैं और आचार भेद प्रकृति भेद के कारण से होता है। जिस प्रकार एक सनातन धर्म में अनेक मार्ग जैसे- ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग, योग की उपासना मार्ग, निष्काम कर्म योग और परोपकारादि सभी साधन परमार्थ प्राप्ति के लिए है उसी प्रकार सभी पंथ अथवा संप्रदाय भी परम तत्त्व की प्राप्ति के मार्ग हैं। सभी पंथ या सम्प्रदायों का लक्ष्य भी धर्म है। यदि वह हिन्दू हो तो भी दूसरे सम्प्रदाय की धर्मसाधना का क्षेत्र मस्जिद को देखकर कुण्ठित न होगा। यदि कोई मुसलमान या ईसाई पूर्णतः धर्मप्राण है तो वह भी हिन्दू के मन्दिर और तीर्थ को हेय दृष्टि से नहीं देखेगा। परन्तु खेद है कि आज का व्यक्ति इतना सङ्कीर्ण हो गया है कि वह सम्प्रदाय भेद के कारण मानवता का अपमान कर रहा है। द्वेषभाव पैदा कर रहा है।

भारत धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतवासियों को धर्मविहीन होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि भारत की राष्ट्रशक्ति भारत के सभी संप्रदायों के धर्म को निरपेक्ष दृष्टि से देखेगी। किसी धर्म के प्रति उसकी पक्षपातपूर्ण दृष्टि न होगी। भारत राष्ट्र जिस प्रकार हिन्दुओं के मन्दिर तथा तीर्थों की रक्षा करेगा,उसी प्रकार से मुसलमानों की मस्जिदों की, ईसाईयों के गिरजाघरों की, बौद्धों के विहार की तथा सिक्खों के गुरुद्वारों की वह समान भाव से रक्षा करेगा। पंथ अथवा सम्प्रदायों का होना विविधता में एकता है। जब तक धर्म वैविध्य है तब तक सम्प्रदाय है। ये अनादि काल से चले आ रहे हैं। हम अन्ननिरपेक्ष रह सकते हैं, वस्त्र निरपेक्ष रह सकते हैं, जलनिरपेक्ष रह सकते हैं किन्तु धर्म निरपेक्ष नहीं रह सकते। क्योंकि धर्म, कर्म और ज्ञान सापेक्ष हैं निरपेक्ष नहीं हैं।

कर्महीन धर्म अथवा ज्ञान विहीन धर्म जिस क्षेत्र में आश्रय लेते हैं उसी क्षेत्र में उत्कट साम्प्रदायकि विद्वेष का समुत्पन्न होना अवश्यम्भावी होता है। यह मानना होगा कि आज कर्म हो गया है स्वार्थसिद्धि का सेतु और ज्ञान हो गया है केवल पुस्तकीय विद्या। ईश्वरीय कर्म और ईश्वरीय ज्ञान से वंचित होकर लोगों ने वास्तविक धर्म को खोकर सम्प्रदाय की रचना की है। ❑

(एसोशिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र,
उच्च शिक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश)

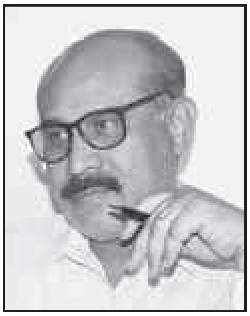

योग महज शारीरिक व्यायाम ही नहीं है। यह व्यक्ति को समाज और ब्रह्माण्ड से जोड़ता है। पुनः यहाँ पर दूसरी चुनौती सिद्धांतों की होगी। विज्ञान और केवल वैज्ञानिक सिद्धांतों जिसे व्यवहारवाद और उत्तरव्यवहारवाद के रूप में पाठ्यपुस्तकों में पढ़ा जाता है, वह ब्रह्माण्ड की शक्तियों पर सवालिया निशान उठाएगा। उसे मिथ और मनगढ़ंत कहानियाँ बताकर झुठलाएगा। जब भारत के प्रधानमंत्री ने गणेश के सूंड की चर्चा करते हुए आधुनिक तकनीक प्लास्टिक सर्जरी की बात कही थी तो उसे लोगों ने हँसी में उड़ाया। जब माता सीता के संदर्भ में टेस्ट ट्यूब बेबी की बात कही गई तो वही व्यंग्य पुनः किए गए। जब महाभारत के युद्ध में प्रयोग किए गए ब्रह्मास्त्र की चर्चा होती है और उसकी तुलना आज की आण्विक शक्तियों से की जाती है तो उस पर ताने कसे जाते हैं। इसलिए सोच को आत्मसात करने की समस्या है।

भारत, भारतीयता और शिक्षा

❑ **प्रो. सतीश कुमार**

निस्संदेह भारत की शिक्षा व्यवस्था पर सवालिया निशान लगाया जा रहा है। मैकाले ने यह बात शिद्दत के साथ कही थी कि अंग्रेजों का शासन खत्म हो जाएगा लेकिन अंग्रेजियत शताब्दियों तक बनी रहेगी, भारतीय उस भार से मुक्त नहीं हो पाएँगे। दरअसल भारत के प्रथम प्रधानमंत्री भी दिमाग और उसूल से पूरी तरह अंग्रेज थे, उनकी सोच थी कि अंग्रेजियत में वह रोशनी है जो पश्चिम से आती है और उसके बिना एक अविकसित समाज का जीर्णोद्धार नहीं हो सकता। सरकारी सत्ता पर इसी तरह की नीतियाँ बनती रही, भाषाई संघर्ष हुआ, हिंदी भाषी और गैर हिंदी भाषी आपस में गुत्थम-गुत्था हुए तो अंग्रेजी की ही विजय हुई। 68 वर्षों के शासन काल में रेंगती शिक्षा व्यवस्था की परिभाषा दो महत्त्वपूर्ण उदाहरणों से रखना चाहूँगा। पहला, दिल्ली के सबसे अच्छे विद्यालयों से चंद बच्चे अपने गाँव गए। सर्दी का मौसम था। बच्चों की उम्र 10 साल से 14 साल की थी। ये सारे बच्चे 6 से 10 वीं कक्षा तक के थे। गाँव के हरे भरे खेतो में गेहूँ, चना और तिलहन के पौधे लगे हुए थे, समाज विज्ञान की किताबों में इन बच्चों की रबी और खरीफ फसल के रूप में पढ़ाया जाता है। ताज्जुब की बात है कि कोई भी बच्चा उपयुक्त फसल को पहचान नहीं पाया, उन्हें यह नहीं मालूम था कि रात में जो हम रोटी खाते हैं, वह इसी गेहूँ के फसल से बनती है। दूसरा उदाहरण कान्वेंट और सरकारी स्कूल के बीच के अंतर को लेकर है। करीब 40 बच्चों की टोली को दो भागों में बाँट दिया गया। एक टोली में वे सारे बच्चे थे, जो कान्वेंट स्कूल में मोटी फीस की अदायगी से पढ़ते है। इस टोली में हमारे और आपके ही बच्चे हैं। दूसरी टोली में वो बच्चे थे जो नगरपालिका या सरकारी विद्यालयों में पढ़ते थे, वो सामन्यत: गरीब तबके के बच्चे थे, जिनके माता-पिता मजदूरी या गार्ड का काम दूसरे घरों में करते हैं।

जब राष्ट्रगान गाने की बात हुई तो ताज्जुब होगा, किसी भी कान्वेंट के बच्चे ने अपना राष्ट्रीय गान एक बार में पूरी तरह से सुनाया हो, वहीं दूसरी ओर गरीब तबकों के बच्चों ने राष्ट्र गान सुना दिया। अब प्रश्न यहाँ पर शिक्षा व्यवस्था पर है। कैसे भारतीयता और भारत शिक्षा तंत्र से विमुख होता गया। उदारवादी लोकतंत्र ने वैसे लोगों को तरजीह देनी शुरू कर दी जो भारत को 100 खंडों में बाँटना चाहते हैं। राष्ट्र और राष्ट्रीयता को एक अभद्र शब्द मान लिया गया, उसकी तौहीन की जाने लगी। चूँकि शिक्षा तंत्र से भारत गौण होता गया, सब कुछ विदेशी परोसा जाने लगा। बच्चों के समर वर्कशॉप विदेशों में आयोजित किये जाने लगे। बच्चे अपने देश को भूलते गए और विदेश की मृग मरीचिका में फँसते चले गए। इसका दुष्परिणाम 70 सालों बाद समाज के सामने दिखने लगा। पिछले वर्ष दिल्ली इंजीनियरिंग कॉलेज से एक बच्चे का चयन गूगल कंपनी में हो गया। उसका पैकेज 1.5 करोड़ तय हुआ। जब उससे पूछा गया कि इतना पैसा तुम क्या करोगे तो उसका जवाब भी अद्भुत था। क्या इन पैसों को माँ-बाप के बीच में बाँटोगे, उसका कहना था कि क्यों, माँ-बाप अपनी जिंदगी जी रहे हैं उनको जरूरत नहीं, शिक्षक ने पूछा कुछ हमारी मद्द करोगे, उसका उत्तर था, सर आपने सब को पढ़ाया, मेरी सफलता मेरी मेहनत और लगन के कारण हुई है, इसको मैं किसी के बीच में नहीं बाँटूँगा।

जैसे-जैसे हमारी शिक्षा विदेशी होती गयी, हम भी विचार से विदेशी आवरण में ढलते चले गए। उनकी हर बात मीठी लगने लगी और भारतीय ज्ञान ओछा और अधकचरा दिखने लगा। हम यह कहने लगे कि चाणक्य भारत का मैकियावली है। हम इंडिक स्टडीज को बकवास और थोथा मानने लगे। हम हिंदी प्रदेश के होने के बावजूद इस बात पर गर्व महसूस करने लगे कि हमें हिंदी नहीं आती। समाज विज्ञान में विदेशी चिंतकों की एक लम्बी फेहरिस्त तैयार की गयी, हमारे प्रबुद्ध विद्वानों के द्वारा उसे पूरे देश के शिक्षा संस्थाओं में लागू किया गया। इसके बावजूद आज तक किसी भारतीय ने मूलभूत सामाजिक विज्ञान में किसी भी सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया। कारण मौलिक जानकारी का अभाव। पश्चिमी आईने से भारत की

तस्वीर को नहीं आँका जा सकता, जिसकी कोशिश पिछले 68 वर्षों से हो रही है। हमने ज्ञान के नाम पर बच्चों को सूचना ढोने वाला खच्चर बना दिया है, जिसकी रचनात्मक ढाँचे को तोड़ मरोड़ दिया गया और एक कृत्रिम मशीन की तरह लाइन में खड़ा कर दिया गया।

भारतीय सोच और विचार गुरुकुल परम्परा पर चलती थी। वहाँ शिक्षा महज आर्थिक उपार्जन का साधन मात्र नहीं था, बल्कि समाज और राष्ट्र को बनाने की विधि थी। यह महत्त्वपूर्ण है कि वर्तमान केंद्र की सरकार ने अपनी खोई हुई विरासत को तलाशने की कोशिश शुरू कर दी है।

राष्ट्र राज्य की पश्चिमी परिभाषा ने ही सब तरह से समाज और राज्य के बीच के आपसी रिश्तों को इस तरह बाँट दिया है कि उनको सजाने और संवारने में कई विसंगतियाँ सामने आ जाती है। इसके बावजूद रास्ते हैं। परिवर्तन संभव है लेकिन उसके लिए गंभीर कोशिश करनी होगी। योग सिद्धांत एक मार्ग है जो विश्व व्यवस्था की विखण्डित तस्वीर को जोड़ सकता है। यह परिकल्पना भारतीय है। जो अध्यात्म से जुड़ी हुई है। यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण चुनौती है। कुछ दिन पहले यह रिपोर्ट एक अमेरिकी थिंक टैंक द्वारा लाई गई कि 2050 तक सबसे अधिक आबादी वाला समूह मुस्लिम देशों का होगा। दूसरे नम्बर पर गैर ईश्वरवादियों का होगा और पुनः ईसाई और हिंदू मतावलंबियों का है अर्थात् इस्लाम जिसका इतिहास ही रक्तरंजित रहा है। हंटिंग्टन की थ्योरी 'सभ्यताओं का संघर्ष' भी इस्लाम की कट्टरता की बात करता है। दूसरा चीन का विशाल हुजूम गैर ईश्वरवाद का प्रवर्तक है। चीन में 61 प्रतिशत आबादी नास्तिक है। वैसे धर्म की वेदना चीनवासियों को भी सताने लगी है। लोग अपने अस्तित्त्व बोध की बात करने लगे हैं। इस व्यवस्था में योग सिद्धांत को अंतरराष्ट्रीय नियामक बनाना आसान काम नहीं है। जब भारतीय प्रधानमंत्री ने संयुक्त राष्ट्र में इस सिद्धांत की स्वीकृति दी थी। 21 जून, 2015 से योग दिवस की शुरूआत हुई। बौद्ध धर्म गुरु दलाई लामा ने इसे विश्व व्यवस्था में भारतीय भेंट के रूप में माना और यह घोषणा की कि भारतीय अध्यात्म ही विश्व व्यवस्था को सही रास्ते पर ला सकती है।

योग महज शारीरिक व्यायाम ही नहीं है। यह व्यक्ति को समाज और ब्रह्माण्ड से जोड़ता है। पुनः यहाँ पर दूसरी चुनौती सिद्धांतों की होगी। विज्ञान और केवल वैज्ञानिक सिद्धांतों जिसे व्यवहारवाद और उत्तरव्यवहारवाद के रूप में पाठ्यपुस्तकों में पढ़ा जाता है, वह ब्रह्माण्ड की शक्तियों पर सवालिया निशान उठाएगा। उसे मिथ और मनगढ़ंत कहानियाँ बताकर झुठलाएगा। जब भारत के प्रधानमंत्री ने गणेश के सूंड की चर्चा करते हुए आधुनिक तकनीक प्लास्टिक सर्जरी की बात कही थी तो उसे लोगों ने हँसी में उड़ाया। जब माता सीता के संदर्भ में टेस्ट ट्यूब बेबी की बात कही गई तो वही व्यंग्य पुनः किए गए। जब महाभारत के युद्ध में प्रयोग किए गए ब्रह्मास्त्र की चर्चा होती है और उसकी तुलना आज की आण्विक शक्तियों से की जाती है तो उस पर ताने कसे जाते हैं। इसलिए सोच को आत्मसात करने की समस्या है। विज्ञान के पुरोधा आईंस्टाइन की बात भी नहीं मानते। आईंस्टाइन ने योग और अध्यात्म की खूब प्रशंसा की थी।

योग को अगर अंतरराष्ट्रीय संबंध से जोड़कर देखें तो कई बातें नियामक के रूप में दिखाई देती हैं। पहला 'वसुधैव कुटुंबकम्' अर्थात् पूरा विश्व एक परिवार है। यह सिद्धांत किसी उदारवादी या मार्क्सवादी सिद्धांत में नहीं आता। चूंकि भारतीय सोच अध्यात्म पर टिकी है, इस व्यवस्था में हर जीव-जन्तु के लिए भी जगह है। इसमें लालच और ढोंग नहीं है। इसकी शुरूआत व्यक्ति से होती है। दूसरा सिद्धांत 'एकम् सत्य विप्रा बहुधा वंदति' सत्य एक है इसके कहने के तरीके अलग-अलग है। आधुनिक वाद-विवाद बहुसंस्कृतिवाद पर चर्चा होती है। जातीय विद्वेष को लेकर बड़े पैमाने पर हत्याएँ हो रही है। अफगानिस्तान और पूरे मध्य एशिया में खूनी जंग चल रही है। कारण सत्य को नहीं पहचानने की भूल। प्रश्न यहाँ पर अत्यंत गंभीर है। इस्लाम श्रेष्ठता की जंग लड़ रहा है। इसाई मिशनरियां गरीब देशों में धर्म परिवर्तन की कोशिश में है। तीसरा **'सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु'** अर्थात् सभी सुखी, नीरोग और बुद्धिमान बने रहें। यह सोच दुनिया में किसी सिद्धांत में नहीं है।

दरअसल ये सारे सिद्धांत जो वेदों के संग्रहों के उपरांत आए हैं, जो विश्व व्यवस्था को नया स्वरूप देने में सक्षम है लेकिन समस्या स्वीकृति की है। चूंकि भारत विश्व शक्ति के केंद्र में नहीं है। इसलिए इसके सिद्धांत की स्वीकृति भी नहीं है। भारत का पौराणिक इतिहास युद्ध और राज्य व्यवस्था की भी चर्चा करता है। महाभारत युद्ध में भगवान कृष्ण की गीता का अध्याय 'धर्मजनक' युद्ध की बात करता है। सत्य को स्थापित करने के लिए प्रयोग किया गया, बल हिंसा नहीं है बल्कि धर्म संगत है। प्रो. अमिताभ भट्ट ने इस बात की वकालत की कि "अगर दुनिया के सारे साहित्य का विनाश हो जाता है और गीता का पाठ बचा रहता है तो अंतरराष्ट्रीय राजनीति को पढ़ने और समझने में कोई दिक्कत नहीं होगी।"

यह सच है कि कई विद्वानों ने भारतीय आध्यात्मिक शक्ति को दुनिया के लिए महत्त्वपूर्ण माना है। दलाई लामा, मार्टिन लूथर और कइयों ने यह माना है कि भारत धर्म गुरु रहा है और उसकी भूमिका से ही कई समस्याओं का समाधान संभव हो सकता है। योग दिवस की स्वीकृति अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मिल चुकी है लेकिन इसका अनुपालन शेष है। यह एक सिद्धांत है जिसके विस्तार से दुनिया की समस्याओं का हल निकल सकता है। रोग और गरीबी के दलदल में फँसे करोड़ों लोगों को निजात मिल सकती है।❑

(प्रोफेसर-राजनीति विज्ञान विभाग,
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

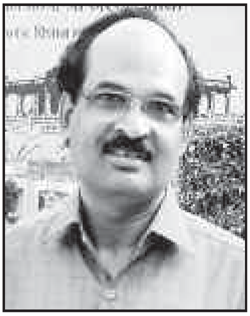

भगिनी के अनुसार घर में सिखाए जाने वाले आदर्शों को पुष्ट करना पाठशाला की और पाठशाला में दी जाने वाली शिक्षा को सबलता प्रदान करना घर की सर्वोच्च अभिलाषा होनी चाहिये। इस लक्ष्य से दूर हटने की अपेक्षा घनीभूत अज्ञानता को दूर करना उन्होंने बेहतर माना है। किसी की आलोचना करना या हतोत्साहित करना कभी शिक्षा के साधन नहीं हो सकते। अपने विद्यार्थियों में उत्तम गुणों का दर्शन करने वाला व्यक्ति ही प्रभावी शिक्षक बन सकता है। भारतीय जीवन की महानता की स्व-अनुभूति से ही बाह्य संसार को हम महानता का आभास करा सकते हैं। अपने लोगों से प्रेम करके ही हम मानवता से प्रेम करना सीख सकते हैं और भारतीय महिला के भविष्य में दृढ़ निष्ठा से ही पुरुषों को महान् भविष्य का स्वप्न साकार करने के योग्य बनाया जा सकता है।

शिक्षा और भगिनी निवेदिता

❑ **उमेश कुमार चौरसिया**

स्वामी विवेकानन्द की मानस पुत्री भगिनी निवेदिता का जीवन एक महत् लक्ष्य के प्रति सर्वतोभावेन समर्पण आदेशोन्मुख गाथा है। वे एक शिक्षिका बनकर आयीं परन्तु सेविका बनकर अपने गुरु विवेकानन्द की इस पवित्र मातृभूमि के लिए स्वयं का कण-कण समर्पित कर दिया। मार्गरेट एलिजाबेथ नोबुल से निवेदिता (समर्पिता) बनीं भगिनी की मूलत: शिक्षिका के गुरुतर-भार का दायित्व ग्रहण करने हेतु ही भारत भूमि पर पदार्पण किया था। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान देते हुए भगिनी ने 'निवेदिता पाठशाला' के माध्यम से विशेष प्रभावी शिक्षा पद्धति का प्रारंभ किया था। उनसे यह पूछे जाने पर कि वे कौन हैं, तो उनका उत्तर होता था कि वे एक शिक्षिका हैं । यह उपयुक्त उत्तर था क्योंकि भारत में बालिकाओं को अक्षर ज्ञान कराने से प्रारंभ हुए उनके जीवन की परिणति सभी को राष्ट्रीयता, प्रेम एवं सेवा का पाठ पढ़ाने में हुई।

भारतीय समाज और उसकी आवश्यकताओं पर भगिनी ने गहन चिंतन किया था। वे उसके वर्तमान से क्षुब्ध और भविष्य के प्रति आशान्वित थी। राष्ट्र को सतेज बनाने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपाय था 'शिक्षा'। उनकी पुस्तक 'Hints on national education in India.' में सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकताओं का उत्कृष्ट विवेचन किया गया है। इस पुस्तक की भूमिका में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए शिक्षित युवा लोगों द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए अनिवार्य सेवा करने का आह्वान किया गया है । इसमें संकलित लेखों में जिन बातों पर बल दिया गया है, वे हैं - (1) शिक्षा के स्वरूप को ऐसा बनाया जाए, जिससे भारतीय जीवन को भली-भांति समझा जा सके। (2) इनमें ज्ञानार्जन, सामान्य सामाजिक अवधारणाओं तथा पूर्ण मानवीय विकास के लिये मानसिक तैयारी के रूप में शिक्षा के तीन तत्त्वों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। (3) बुद्धि के साथ ही मनोवेगों के प्रशिक्षण पर बल दिया गया है ।(4) राष्ट्र निर्माण में शिक्षा की उपयोगिता को रेखांकित किया गया है। (5) राष्ट्रीय इतिहास व भूगोल पर आधारित राष्ट्रीय आदर्शों से शिक्षा को प्रेरित करने का आह्वान किया गया है। भगिनी ने इसमें विदेशी संस्कृति के भ्रामक उन्माद के बारे में भी लिखा है। इसी क्रम में Suggestions for Indian Vivekananda Socities, Notes on Historical Research, The place of Kinder garten in Indian Schools आदि ज्ञानवर्द्धक लेख भी है ।

शिक्षा सिद्धान्त की आत्मा की आवश्यकता - भगिनी निवेदिता के अनुसार हमारे शिक्षा सिद्धान्त की एक आत्मा होना नितान्त आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा एकता का निर्माण करना है। हमें बालक को उसकी सम्पूर्णता में देखना होगा। जब तक हम भावनाओं और अभिरुचि (feelings and choice) को प्रशिक्षित नहीं करते, व्यक्ति अशिक्षित ही रहेगा। इसके अभाव में वह कतिपय बौद्धिक बाजीगरी के लिए ही सज्जित हो सकता है, जिसकी उसे जानकारी करायी जाती है। इस बाजीगरी के द्वारा वह अपनी रोटी-रोजी कमा सकता है, किंतु न तो हृदयतंत्री को झंकृत कर सकता है, न ही जीवन का संचार कर सकता है। उसे किसी भी सूरत में मनुष्य नहीं, अधिक से अधिक अनुकरण प्रवीण वानर कहा जा सकता है। चतुर दिखने के लिए, मनुष्य बनने के सदुद्देश्य के बजाय केवल रोजी-रोटी कमाने के प्रयोजन से, पढ़ाई करने का अभिप्राय होगा, इस संकट में फँसना। इसलिए बालक को दी जाने वाली प्रत्येक जानकारी ऐसी होनी चाहिए जो उसके हृदय को छू सके।

भावनाओं के प्रशिक्षण से अधिक महत्वपूर्ण कोई बात नहीं है। उदात्त भावनुभूति एवं उत्कृष्ट व गरिमामय अभिरुचि आत्मिक ऊर्जा के

विकास के लिए शैक्षणिक प्रक्रिया के किसी अन्य पहलू की अपेक्षा हजार गुना महत्त्वपूर्ण है। जिस बालक में यह शक्ति विद्यमान एवं प्रबल है वह किन्हीं भी परिस्थितियों में सर्वोत्तम संभाव्य कार्य करने में सक्षम होगा। इस समय बहुत कम माता-पिता व शिक्षक संवेदनशीलता के संवर्धन की इस आवश्यकता व महत्ता के बारे में सोचते हैं। शाला में जाने का औचित्य तभी है, जब इससे छात्र का अन्त:करण सद्विचारों व सत्कार्यों की प्रेरणा से, बलिदान की उदात्त भावना से जगमग हो और यह तभी संभव है जब छात्र को जन, देश एवं धर्म की भलाई करने में सक्षम बनाया जाए।

हमें अपने बच्चों को राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत करना है। हमें उनसे भारत के लिए बलिदान, भारत के लिए भक्ति की मांग करनी है। हमें उन्हे शौर्य-पूर्ण ढंग से सोचना सिखाना है। उनका लालन-पालन इस ढंग से करना है कि वे अपने देश और देशवासियों के प्रति निष्ठावान बनें। उनमें यह भावना विकसित होनी चाहिए कि मुझे 'मनुष्य' बनने के लिए, दूसरों की मदद करने में सक्षम बनने के लिए पढ़ना है।

राष्ट्रीय शिक्षा – 'राष्ट्रीय शिक्षा' के निहितार्थ स्पष्ट करते हुए भगिनी ने लिखा है कि राष्ट्रीय शिक्षा प्रथमत: व प्रमुखत: राष्ट्रीय आदर्शवाद की शिक्षा है। हमें यह याद रखना होगा कि शिक्षा का उद्देश्य हमारी सहानुभूति व बुद्धि को बंधन मुक्त करना है। यह कार्य विदेशी उपायों से सम्पादित नहीं हो सकता। अधिकाधिक लोगों को अत्यधिक सहज एवं प्रभावी रूप से युक्त करने के लिए परिचित आदर्शों व स्वरूपों का चयन आवश्यक है। हर एक मामले में प्रगति की पूर्ण निरन्तरता आवश्यक है ताकि प्रारंभिक अनुभवों के तत्वों में तीव्र विसंगति नहीं हो। ऐसी विसंगति से वैचारिक संभ्रम का जन्म होता है और यह संभ्रम शैक्षणिक अव्यवस्था का जनक है। अत: एक राष्ट्रीय शिक्षा परिचित तत्त्वों से निर्मित होनी चाहिये। लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किए जाने वाले आदर्शों को पहले हमारे अपने अतीत द्वारा विकसित प्रतीकों के रूप में होना चाहिए। हमारी कल्पना पहले हमारी अपनी वीर-गाथाओं पर आधारित होनी चाहिए। हमारी आशा का ताना-बाना हमारे इतिहास से बुना जाना चाहिए। ज्ञात से अज्ञात की ओर, सरल से कठिन की ओर प्रत्येक शिक्षक का ध्येय और प्रत्येक पाठ का नियम होना चाहिये। लक्ष्य परिचित वस्तु नहीं, ज्ञान है प्रशिक्षित मनीषा ध्येय है। जो शिक्षा परिचित बातों पर ही अटक जाती है, वह मुक्ति के बजाय बंधन बन जाती है। वह वास्तविकता नहीं, प्रहसन होती है।

स्त्री शिक्षा – अतिभौतिकता पर अधिक जोर देने वाली शिक्षा को भारतीय महिलाओं के लिए अनुपयुक्त ठहराते हुए भगिनी ने कहा कि 'विनय को तिरोहित और कोमलता को समाप्त करने वाली केवल बौद्धिक शिक्षा सच्चे अर्थों में शिक्षा नहीं है।' इन गुणों की अभिव्यक्ति मध्यकालीन व आधुनिक सभ्यताओं भले ही अलग-अलग रूपों में हुई हो किंतु दोनों के लिए उनकी महत्ता एक सी है। सही अर्थों में शिक्षा वही है जो चरित्र के विकास व दृढ़ीकरण पर विशेष रूप से ध्यान दे तथा बौद्धिक उपलब्धियों को गौण स्थान दे। अत: भारतीय महिलाओं के लिए जिस प्रश्न को हल किया जाना है, वह है शिक्षा का वह रूप जो आत्मा व मस्तिष्क के गुणों मे सामंजस्य बनाये रखकर दोनों का विकास कर सके।

भारतीय महिलाओं की दृष्टि से ऐसी शिक्षा उपयुक्त नहीं है जिसका प्रारंभ व अंत भारत के साहित्य व शौर्यपूर्ण इतिहास में समाहित नारीत्व के राष्ट्रीय आदर्शों के उन्नयन में नहीं होता। पत्नीत्व से पहले नारीत्व, नारीत्व से पहले मानवता ऐसी बात है जो प्रत्येक अवस्था में बालिका शिक्षण का ध्येय होना चाहिये।

भगिनी के अनुसार घर में सिखाए जाने वाले आदर्शों को पुष्ट करना पाठशाला की और पाठशाला में दी जाने वाली शिक्षा को सबलता प्रदान करना घर की सर्वोच्च अभिलाषा होनी चाहिये। इस लक्ष्य से दूर हटने की अपेक्षा घनीभूत अज्ञानता को दूर करना उन्होंने बेहतर माना है। किसी की आलोचना करना या हतोत्साहित करना कभी शिक्षा के साधन नहीं हो सकते। अपने विद्यार्थियों में उत्तम गुणों का दर्शन करने वाला व्यक्ति ही प्रभावी शिक्षक बन सकता है। भारतीय जीवन की महानता की स्व-अनुभूति से ही बाह्य संसार को हम महानता का आभास करा सकते हैं। अपने लोगों से प्रेम करके ही हम मानवता से प्रेम करना सीख सकते हैं और भारतीय महिला के भविष्य में दृढ़ निष्ठा से ही पुरुषों को महान् भविष्य का स्वप्न साकार करने के योग्य बनाया जा सकता है।

नि:संदेह भगिनी निवेदिता ने शिक्षा जैसे आधारभूत महत्त्व के विषय का मनौवैज्ञानिक, नैतिक व व्यावहारिक दृष्टि से तलस्पर्शी विवेचन किया है। जिस जटिल प्रश्न से आज भी भारत जूझ रहा है, उसके हल के अमूल्य सुझाव स्वामीजी की इस मानसपुत्री के लेखन में निहित है। गंगा के किनारे भी यदि हम प्यासे रहें तो हमारी बुद्धि की बलिहारी है। भारत में शिक्षा के यथोचित स्वरूप की सही दृष्टि जाननी हो तो भगिनी निवेदिता के ज्ञानवर्द्धक-सदुपयोगी लेखों को पढ़ना चाहिये। भगिनी ने उस समय भारत की सामाजिक परिस्थितियों को जितनी गहराई से समझकर शिक्षा के सार्थक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, वह आज भी उतना ही सटीक व महत्त्वपूर्ण है। ❑

(सदस्य, राजस्थान साहित्य अकादमी,
उपाध्यक्ष अ.भा.साहित्य परिषद, चित्तौड़ प्रान्त)

सिविल सेवा परीक्षा में अंग्रेजी बनाम हिन्दी

आजकल जब भी अच्छे स्कूलों की बात होती है तो उनमें पढ़ाई का माध्यम अंग्रेजी होना पहली शर्त होती है। सच यह है कि हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में अच्छे स्कूल अब हम जैसे लोगों की स्मृतियों में ही रह गए हैं जो 30-35 साल पहले सरकारी हिन्दी स्कूलों से पढ़कर आए और हिन्दी माध्यम से परीक्षा देकर सिविल सेवा में सफलता अर्जित कर सके। वर्तमान शिक्षा के इस भाषाई चेहरे को समझे बिना हिन्दी-अंग्रेजी की इस बहस को समझा नहीं जा सकता। दरअसल हिन्दी माध्यम वालों की दो सबसे बड़ी समस्याएँ हैं। पहली यह कि उनकी भाषा हिन्दी तो होती है, लेकिन वह नहीं, जिसे अकादमिक हिन्दी कहा जाता है। दूसरी यह कि बहुत कम विद्यार्थी अपने स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई के दौरान विषय के प्रति तार्किक दृष्टि विकसित कर पाते हैं। जो कर लेते हैं वे सफल हो जाते हैं। तार्किकता अपने आप ही अनुकूल भाषा की भी तलाश कर लेती है।

❑ **डॉ. विजय अग्रवाल**

जब भी सिविल सेवा परीक्षा के परिणाम घोषित होते हैं, अंग्रेजी और हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से परीक्षा देने वाले सफल अभ्यर्थियों के बीच तुलनात्मक अध्ययन होने लगता है। हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में परीक्षा देने वाले सफल अभ्यर्थियों की कम संख्या के आधार पर अक्सर यह स्थापित करने की कोशिश होती है कि इस परीक्षा में अभी भी अंग्रेजी भाषा का दबदबा है। अंग्रेजी भाषा के दबदबे वाले निष्कर्ष से कोई एतराज नहीं है, क्योंकि यह सही है, लेकिन यह धारणा सही नहीं कि यह परीक्षा अंग्रेजी वालों के पक्ष में है। चूंकि सिविल सेवा परीक्षा के जरिये देश के शीर्षस्थ नौकरशाहों की भर्ती की जाती है और इसमें हर वर्ष रात-दिन तैयारी करके लाखों स्नातक बैठते हैं, इसलिए वस्तुस्थिति जानना जरूरी है। कुछ ही दिनों पहले सिविल सेवा परीक्षा वर्ष 2017-18 के परिणाम आए हैं। इसमें शुरू के 25 सफल विद्यार्थियों में एक भी हिन्दी अथवा क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से परीक्षा देने वाला नहीं है, लेकिन इन आँकड़ों के पीछे की सच्चाई की तह तक जाना जरूरी है। हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषा प्रेमियों के लिए तो इस सच्चाई को जानना और भी अधिक जरूरी है, ताकि वे इस दिशा में व्यावहारिक उपाय करके आँकड़ों में कुछ सुधार ला सकें।

भारत सरकार के विभिन्न मंत्रलयों की तरह संघ लोक सेवा आयोग भी हर साल अपनी वार्षिक रिपोर्ट जारी करता है। इसमें सिविल सेवा परीक्षा के परिणामों के बारे में बहुत विस्तार के साथ प्रकाश डाला जाता है। फिलहाल वर्ष 2016 के परिणाम के आँकड़े उपलब्ध हैं। हम इन्हीं आकड़ों के आधार पर भाषा संबंधी सत्य को जानने की कोशिश करते हैं। तीन स्तरों वाली सिविल सेवा परीक्षा के जरिये हर साल विभिन्न 25 सेवाओं के लिए लगभग एक हजार युवाओं को चुना जाता है। वर्ष 2016 के आँकड़ों के अनुसार अंतिम चयनित युवाओं में 51.5 प्रतिशत इंजीनियरिंग से, 13.5 प्रतिशत मेडिकल से और 7 प्रतिशत विज्ञान की पृष्ठभूमि वाले अभ्यर्थी थे जो इन सभी का

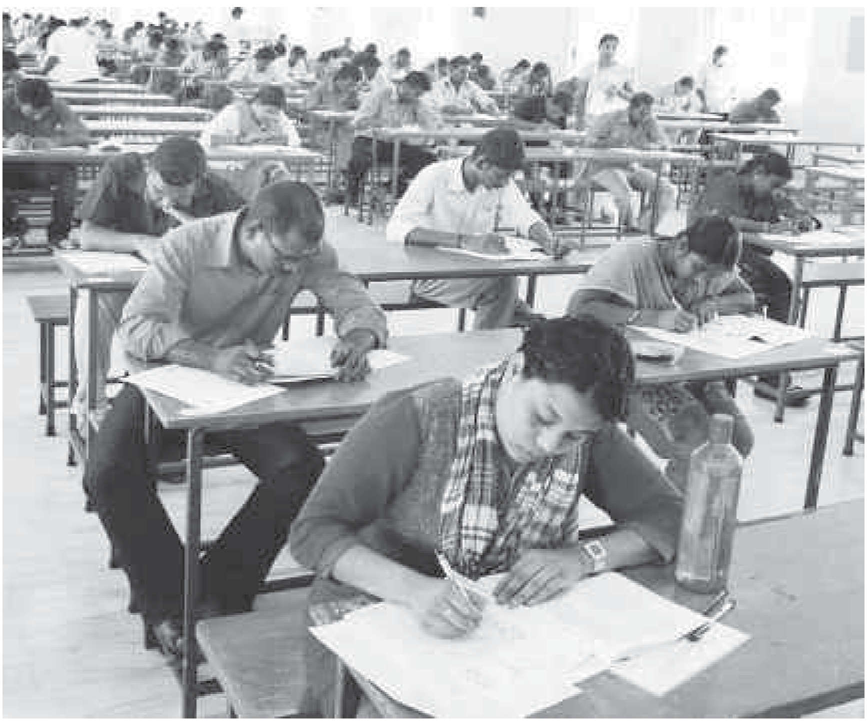

कुल 72 प्रतिशत था। स्नातक में इन 72 प्रतिशत विद्यार्थियों के विषय मूलत: विज्ञान के विषय थे। यहाँ यह बात गौर करने की है कि विज्ञान की शिक्षा का मुख्य माध्यम अंग्रेजी है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि जब इन अभ्यर्थियों के सामने भाषा का माध्यम चुनने का विकल्प आता है तो ये अंग्रेजी को चुनते हैं और उन्हें चुनना भी चाहिए, क्योंकि भाषा की प्रौढ़ता सिविल सेवा परीक्षा में सफलता का एक अनिवार्य तत्त्व होता है। शेष 28 प्रतिशत चयनित विद्यार्थी ही आर्ट्स की पृष्ठभूमि वाले थे, लेकिन इनमें से भी बहुत से विद्यार्थी अंग्रेजी माध्यम से ही पढ़कर आए थे।

आजकल जब भी अच्छे स्कूलों की बात होती है तो उनमें पढ़ाई का माध्यम अंग्रेजी होना पहली शर्त होती है। सच यह है कि हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में अच्छे स्कूल अब हम जैसे लोगों की स्मृतियों में ही रह गए हैं जो 30-35 साल पहले सरकारी हिन्दी स्कूलों से पढ़कर आए और हिन्दी माध्यम से परीक्षा देकर सिविल सेवा में सफलता अर्जित कर सके। वर्तमान शिक्षा के इस भाषाई चेहरे को समझे बिना हिन्दी-अंग्रेजी की इस बहस को समझा नहीं जा सकता। अब हम एक अन्य आँकड़ा लेते हैं। सिविल सेवा परीक्षा का सर्वाधिक प्रिय विषय भूगोल है। कुल 3500 अभ्यर्थियों में से हिन्दी माध्यम वाले चार सौ के आसपास थे यानी लगभग 12 प्रतिशत। अन्य विषयों की भी भाषाई स्थिति यही थी। उदाहरण के तौर पर दूसरे लोकप्रिय विषय लोक-प्रशासन के कुल 2800 अभ्यर्थियों में हिन्दी वाले केवल 186 थे। इसी तरह समाजशास्त्र के 1500 अभ्यर्थियों में हिन्दी के केवल 76 थे। यह चरण इस परीक्षा का दूसरा और सबसे महत्त्वपूर्ण चरण होता है और कुल 2025 अंकों वाली इस परीक्षा के 1750 अंक इसी चरण में होते हैं। इस परीक्षा की एक मजेदार बात यह है कि चयनित होने वाले छात्रों में 87.5 प्रतिशत छात्र आर्ट्स के ही विषयों को तरजीह देते हैं। यह 500 अंकों का होता है। शेष 1250 अंकों में चार पेपर सामान्य अध्ययन के होते हैं जिनमें आर्ट्स के विषय होते हैं। एक पेपर निबंध का होता है जो आर्ट्स के अभ्यर्थियों के अधिक अनुकूल होता है। यहाँ विचारणीय तथ्य यह है कि सिविल सेवा परीक्षा पूरी तरह से आर्ट्स के विद्यार्थियों के पक्ष में है। बावजूद इसके सफल होने वालों में तीन-चौथाई छात्र विज्ञान के होते हैं। इस परीक्षा के द्वितीय चरण तक पहुँचने के लिए किसी भी तरह की भाषाई योग्यता की जरूरत नहीं होती। प्रथम चरण में सामान्य अध्ययन के वस्तुनिष्ठ प्रकार के पेपर के अधिकांश विषय आर्ट्स वाले होते हैं। मुख्य परीक्षा (द्वितीय चरण) में जनरल इंग्लिश का एक पेपर जरूर होता है, जिसे हिन्दी माध्यम वालों के लिए एक बाधा कहा जा सकता है, लेकिन बहुत ही छोटी सी बाधा, क्योंकि एक तो इसका स्तर दसवीं कक्षा का होता है और दूसरे, इस पेपर को केवल क्वालीफाई करना पड़ता है। इसके प्राप्तांक जोड़े नहीं जाते।

दरअसल हिन्दी माध्यम वालों की दो सबसे बड़ी समस्याएँ हैं। पहली यह कि उनकी भाषा हिन्दी तो होती है, लेकिन वह नहीं, जिसे अकादमिक हिन्दी कहा जाता है। दूसरी यह कि बहुत कम विद्यार्थी अपने स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई के दौरान विषय के प्रति तार्किक दृष्टि विकसित कर पाते हैं। जो कर लेते हैं वे सफल हो जाते हैं। तार्किकता अपने आप ही अनुकूल भाषा की भी तलाश कर लेती है। जबकि विज्ञान के विद्यार्थी इन दोनों से लैस होते हैं। वे अंग्रेजी जानते हैं, क्योंकि उनकी अंग्रेजी सीखी हुई होती है, केवल सुनी हुई नहीं। साथ ही जब वे परीक्षा में आर्ट्स के विषय लेते हैं तो वे उस विषय को भी विज्ञान की तरह पढ़कर उसे समझने की कोशिश करते हैं, क्योंकि यह उनकी आदत बन चुकी होती है।

एक सवाल यह भी उठता है कि क्या हिन्दी या तमिल, उर्दू की कॉपी भी अंग्रेजी जानने वाले जाँचते हैं? यदि नहीं तो क्या हिन्दी, तमिल और उर्दूभाषी परीक्षक अपनी ही भाषाओं से विद्वेष रखते हैं? इस ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए और यह समझा जाना चाहिए कि समस्या किसी तरह के भाषाई द्वेष की नहीं, बल्कि स्वयं को परीक्षा की आवश्यकता के अधिक से अधिक अनुकूल बनाने की है। स्पष्ट है कि हिन्दी और अन्य भारतीय भाषा वाले विद्यालयों को अपना शैक्षिक स्तर सुधारने की आवश्यकता है। ❑

(भारतीय प्रशासनिक सेवा के पूर्व अधिकारी)

भाग-2

समग्र शिक्षा नीति की ओर बढ़ते कदम

❑ डॉ. रेखा भट्ट

आजादी के बाद वामपंथी विचारकों व लेखकों द्वारा तय किये गये पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, विद्यार्थी के कॅरियर बनाने की संवेदनशील अवस्था में आत्मघाती सिद्ध हो रहे हैं। उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों को पूरी तरह बदलना शिक्षा विभाग का शिक्षानीति को समग्र बनाने की दिशा में ठोस कदम होगा। उच्च शिक्षा के ई-शिक्षा युक्त एवं शोध परक बनाकर विश्वस्तरीय शिक्षा प्रदान की जा सकेगी तथा भारत में नालन्दा व तक्षशिला के समकक्ष शिक्षण संस्थानों का पुनर्स्थापन होगा। 2018 की समग्र शिक्षा नीति आने वाले अनेक वर्षों तक सम्पूर्ण शिक्षा जगत को आगे ले जाने में बहुत बड़ा योगदान देगी।

उच्च माध्यमिक शिक्षा (कक्षा 9 से 12वीं) विद्यार्थी के कॅरियर निर्माण का समय माना जाता है। शिक्षा के इस महत्त्वपूर्ण स्तर पर भारत में मैकॉले शिक्षा द्वारा बाबू बनाने की मानसिकता से आज तक उबर नहीं पाये हैं, वहीं स्वतन्त्र भारत में वामपंथी विचारधारा के प्रभाव में दिये गये पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों ने उच्च माध्यमिक शिक्षा में घुन का काम किया है। इस प्रभाव के अन्तर्गत NCERT की पुस्तकें विद्यार्थी के विभिन्न क्षेत्रों में कॅरियर बनाने के लिये मार्गदर्शिका नहीं होती केवल परीक्षाओं में प्रश्नपत्र निर्धारण के लिये अंक प्रदान करने की रूपरेखा तथा पाठ्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करती हैं। हाल ही में पाठ्यपुस्तकों की अनिवार्य उपलब्धता को लेकर कई निजी प्रकाशकों द्वारा पाठ्यपुस्तकों की ब्लेक मार्केटिंग कर करोड़ों का लाभ कमाया गया और NCERT की पाठ्यपुस्तकों को भी व्यवसाय का माध्यम बना लिया गया।

विद्यार्थी के इस कॅरियर पॉईन्ट पर अनेक वर्षों से निजी व्यवसायियों द्वारा शिक्षा का व्यापारीकरण अनेक रूपों में प्रकट हो रहा है। पाठ्यपुस्तकों की अनुपयोगिता के कारण अनेक प्रकार की महँगी गाइड बुक्स निकाल दी गई हैं। इन गाइड बुक्स के विस्तृत और जटिल पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिये अनेक कोचिंग संस्थानों ने मुख्य शिक्षण संस्थानों की जगह ले ली है। इनमें दिये जाने वाले महँगे शिक्षण, कड़ी जाँच प्रक्रिया तथा चयनित विद्यार्थियों की बढ़ी हुई संख्या बताकर विद्यार्थियों के बीच प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया जाता है यह स्पर्धा अभिभावकों का आर्थिक बोझ और विद्यार्थियों का तनाव बढ़ाने का कारण बन गई है।

उच्च माध्यमिक शिक्षा में विद्यार्थी को कॅरियर निर्धारण के दबाव में आकर शिक्षा के व्यावसायिक मकड़जाल से बचाने के लिये पाठ्यक्रम को विस्तृत एवं व्यवस्थित करना शिक्षा नीति का सबसे अधिक निर्णायक कदम होगा।

प्रतियोगी परीक्षाओं के अनुसार विस्तारित किये गये पाठ्यक्रम का कक्षा 9वीं से 12वीं तक समान रूप से वितरण करने से सारा बोझ अन्तिम वर्ष (12वीं कक्षा) में नहीं बढ़ेगा। समाज विज्ञान में, भूगोल, इतिहास, राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र ये चारों विषय शामिल किये जाते हैं। सभी विषय अलग-अलग विशेषज्ञ एवं निष्णात् अध्यापकों द्वारा पूरे विस्तार से पढ़ाये जाते हैं तथा मूल्यांकन भी अलग-अलग किया जाता है किन्तु विद्यार्थी द्वारा सभी विषयों के विस्तृत

पाठ्यक्रमों की एक ही समय में परीक्षा देना विद्यार्थी की क्षमता तथा विषयों की सार्थकता दोनों के साथ न्याय संगत नहीं होता है। यही स्थिति विज्ञान में समाहित तीनों विषयों -रसायन विज्ञान, भौतिकी व जीव विज्ञान के साथ है।

विद्यालय में गाइडबुक्स का प्रयोग न हो इसके लिये NCERT की पुस्तकों में पाठ्यक्रमों को विस्तारित किये जाने की जरूरत है। NCERT द्वारा ही विषय की 2-3 सन्दर्भ पुस्तकें निर्धारित की जाएँ। टेस्ट पेपर, वर्कशीट आदि अभ्यास सामग्री भी NCERT द्वारा लघु पुस्तिकाओं के रूप में उपलब्ध करवायी जाये। इस प्रकार विद्यालय में ही विद्यार्थी को कॅरियर से सम्बन्धी मार्गदर्शन मिल सकेगा। इसका लाभ गरीब एवं प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को मिलेगा जो महँगे कोचिंग सेन्टर और गाइड बुक्स के अभाव में प्रतियोगी परीक्षाओं से वंचित रह जाते हैं। विद्यार्थी के समय का दोहन नहीं होगा और उसे पढ़ने के लिये स्वाध्याय द्वारा विषय की समझ विकसित करने का समय मिलेगा।

परीक्षा के अच्छे परिणामों व सर्वाधिक विद्यार्थियों के चयन के लिये विद्यार्थी की अपेक्षा शिक्षकों को जवाबदेह बनाया जाना इस व्यापारीकरण को रोकने का दूसरा निर्णायक कदम होगा। इसके लिये प्रशासन द्वारा शिक्षकों को तय पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों/सन्दर्भ पुस्तकों का अनुसरण करने, टेस्ट सीरीज द्वारा मूल्यांकन करवाने और विद्यार्थी की स्थिति से समय-समय पर अभिभावकों को तथा प्रबन्धन को अवगत करवाने जैसे मापदण्ड तय किये जाएँ। अपने विषय के निष्णात् व विशेषज्ञ शिक्षकों का ऑनलाईन स्क्रीनिंग व साक्षात्कार के मानक पूर्ण करने पर ही चयन किया जाये। अच्छे परिणाम और सर्वाधिक चयनित छात्रों की संख्या देने वाले शिक्षकों को विशेष पैकेज देकर आमंत्रित किया जाये तथा अतिरिक्त वेतन वृद्धि देकर स्थायी नियुक्ति दी जाये।

उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, कला, मानविकी जैसे क्षेत्रों में भी रोजगार की व्यापक संभावनाएँ है। IIT, IIM और AIMS जैसे संस्थानों की वर्षों से दी जा रही रोजगार परक शिक्षा के कारण इनके लिये प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है। नियमित कोर्स (BA, B.Com., B.Sc.) में प्रवेश के लिये 99 प्रतिशत कट ऑफ प्राप्त करने के लिये होने वाली प्रतिस्पर्धा कम करने के लिये दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा शुद्ध की गई पात्रता परीक्षाओं (National Testing Agency) जैसे उपाय सभी विश्वविद्यालयों में लागू किये जाने चाहिये।

देश की अर्थव्यवस्था बढ़ाने में योग्यता निर्धारक विद्यार्थियों का सबसे अधिक योगदान होता है अत: उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी कॅरियर की आवश्यकतायों के अनुसार शिक्षा उपलब्ध करवाने से गरीब छात्रों को भी रोजगारपरक शिक्षा सरकारी संस्थानों में सुलभ हो सकेगी, कोचिंग सेन्टर व गाइड बुक्स का व्यापार बन्द होगा। आर्थिक सुरक्षा मिलने व सही दिशा में कॅरियर सम्बन्धी मार्गदर्शन मिलने से विद्यार्थी का मानसिक तनाव समाप्त होगा।

उच्च शिक्षा द्वारा विद्यार्थी उच्च स्तरीय आजीविका के साधनों को प्राप्त करने का प्रयास करता है ताकि वह अधिक समृद्ध और क्षमतावान बन सके, किन्तु विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी शिक्षित बेरोजगार के रूप में निकलता है। उच्च शिक्षा संस्थानों में स्तरीय साधन सुविधाएँ और उच्च स्तरीय शिक्षण अपेक्षित होता है जो गिने चुने IIT, IIM, AIMS जैसे संस्थानों को छोड़कर कहीं नहीं मिलता और हम विश्व स्तरीय PISA रैंकिंग में स्थान पाने की उम्मीद करते हैं। रैंकिंग पद्धति चाहे अन्तरराष्ट्रीय हो या भारतीय मापदण्डों के अनुसार हो सभी में शिक्षा की गुणवत्ता महत्त्वपूर्ण होती है। भारतीय मानकों के अनुसार NAAC (National Assessment of Accredition Council) द्वारा करायी जाने वाली ग्रेडिंग से भी शिक्षण तथा शोध की गुणवत्ता का मापन नहीं किया जाता, अत: NAAC द्वारा की गई ग्रेडिंग विद्यार्थी को संस्थान की वास्तविक स्थिति के आकलन से दूर रखती है। विदेशी शिक्षण संस्थानों को अपनी पहचान स्थापित करने और सर्वोत्कृष्ट बनाने के लिये पारदर्शिता रखनी होती है। ये संस्थाएँ डिजीटल पोर्टल के माध्यम से शिक्षण संस्थान में साधन-सुविधाएँ व तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता का विवरण प्रस्तुत करती हैं। शिक्षण कार्य के लिये उच्च स्तरीय शिक्षकों जैसे नोबल पुरस्कार प्राप्त शिक्षकों प्रख्यात लेखकों, विचारकों, आदि का विवरण तथा शिक्षकों के उत्कृष्ट शिक्षण कार्यों के परिणामों से विद्यार्थियों को मिले प्लेसमेन्ट, सामाजिक कार्यों में, कानून में, राजनीतिक क्षेत्र में, कला साहित्य के क्षेत्र में, सर्वोच्च सेवाएँ देने वाले छात्रों की सूची के रूप में प्रकाशित किया जाता है। इस प्रकार बड़े वेतनमान पाने वाले शिक्षक के रूप में शिक्षक का महत्त्व नहीं बनता बल्कि बौद्धिक स्तर पर वह अपने अनुभवों से प्राप्त ज्ञान का सर्वोत्तम विद्यार्थी को देकर पहचान बनाता है। ये शिक्षण संस्थान अपने शोध कार्यों को भी सामाजिक आवश्यकताओं व्यावसायिक व तकनीकी आदि क्षेत्रों में किये गये एवं आगे किये जाने वाले मौलिक कार्यों व नवाचारों का उल्लेख करते हैं। निवेश व खर्च का स्पष्ट लेखा-जोखा दिया जाता है। कैंसर, एड्स, कुपोषित बच्चों एवं चिकित्सा जैसे मानवता के हित से जुड़े शोध कार्यों के लिये उद्योगपतियों, दानदाताओं द्वारा बहुत बड़ी राशि दान में दी जाती है।

भारत में शिक्षण संस्थानों में डिजीटल उपयोग केवल शुल्क जमा कराने, प्रवेश प्रक्रिया, विद्यार्थियों की उपस्थिति देने, परीक्षाओं के प्रवेश के लिये एवं मूल्यांकन में प्राप्तांकों को प्रकाशित करने के लिये किया जाता है। इसी तरह कितने शोधकार्य किये जा रहे हैं, उनकी संख्या के आधार पर NAAC में ग्रेडिंग कर दी जाती है किन्तु शोध की गुणवत्ता के मापक तय नहीं किये जाते हैं। शिक्षा में गुणवत्ता बढ़ाने के

लिये HRD द्वारा केवल 20 विश्वविद्यालयों को विश्वस्तरीय बनाने के लिये चयनित किया गया है, इससे पूरे देश के कितने विद्यार्थी लाभान्वित हो सकेंगे इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

उच्च शिक्षा को स्तरीय एवं सार्थक बनाने के लिये उच्च शिक्षण संस्थानों में उच्च स्तरीय साधन सुविधाएँ व तकनीकी संसाधन उपलब्ध कराने होते हैं। शिक्षण कार्य को सुचारू बनाने के लिये शिक्षकों की नियमित नियुक्तियाँ करनी होती हैं। भविष्य की आवश्यकताओं के अनुसार अग्रिम शोधों के लिये तथा तात्कालिक आवश्यकाओं को पूरा करने वाले शोध व अनुसंधान पर भारी निवेश करने की जरूरत होती है। शोध कार्यों में सहायक हो सकें, नयी जानकारियाँ प्रदान की जा सकें, इसके लिये सेमीनार व क्रॉन्फ्रेंस आयोजित करने होते हैं। अन्तर्विषयक भागीदारों से कॉन्फ्रेंस में उपस्थिति संख्या बढ़ा देना, जरनल छपवा देना, मॉडल तथा पेपर प्रस्तुत करना जैसे कार्य केवल कार्यक्रम की औपचारिकता पूर्ण करते हैं। इन सब कार्यों में बड़े निवेश की आवश्यकता होती है।GDP का 6 प्रतिशत तय मानक है किन्तु शासन द्वारा 1 प्रतिशत ही उच्च शिक्षा पर खर्च किया जाता है।

बुनियादी साधन सुविधाएँ, शिक्षकों की भर्ती व मौलिक शोधकार्यों में किये जाने वाले खर्च की राशि मूलभूत निवेश है जिसे वहन करना सरकार का दायित्व है किन्तु सरकार यह अपेक्षा निजी क्षेत्रों से रखती है। परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा में निजीकरण और कारपोरेट्स का दखल बढ़ गया है तथा उच्च शिक्षा के केन्द्र खोलकर व्यापार करने व लाभ कमाने का माध्यम बन गई है। निजी शिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिये शुल्क जमा कराने की क्षमता महत्त्वपूर्ण है विद्यार्थी की योग्यता नहीं। इनमें महँगी शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी विद्यार्थी को अपेक्षित योग्यता प्राप्त नहीं होती। प्रवेश संख्या बढ़ाने के लिये निजी संस्थानों में साधन सुविधाओं की चकाचौंध और रोजगार गारण्टी के लुभावने विज्ञापनों के आगे सरकारी संस्थानों में पढ़ने का कारण सम्पन्नता और योग्यता का अभाव माना जाने लगा है।

उच्च शिक्षा में सरकार द्वारा पर्याप्त निवेश करके शिक्षण संस्थानों के स्तर में सुधार किया जा सकता है। शिक्षकों की नियुक्ति द्वारा शिक्षण कार्य को उत्कृष्ट बनाया जा सकता है और शोध कार्यों को अन्तरराष्ट्रीय मानकों पर लाया जा सकता है तथा शोध पत्रों के Citation Index (CI Value) को बढ़ाया जा सकता है। वृहद् शोध कार्यों को स्थानीय व बड़े उद्योगों से जोड़कर उद्यमियों से फण्डिंग प्राप्त की जा सकती है। शिक्षण संस्थान व शिक्षक की प्रतिष्ठा से अनेक दानदाता शोध खर्च उठाने के लिये प्रेरित होते हैं।

सुनियोजित शिक्षण प्रणाली ही शिक्षण कार्य को उत्कृष्ट बनाती है। शिक्षण प्रणाली में निर्धारित की गई पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम सम्पूर्ण शिक्षण कार्य को दिशा देने का कार्य करते हैं। अतः वैश्विक पाठ्यक्रम पर केन्द्रित किया जाये और शिक्षण कार्य का क्रियान्वयन संभव हो तो उच्च शिक्षा व्यवस्था में सुधार के परिणाम स्पष्ट दिखाई देंगे।

उच्च शिक्षा पाठ्यक्रमों की विविधता से, शिक्षा प्राप्ति के बाद विद्यार्थी को अपनी क्षमता के अनुसार काम करने के अनेक विकल्प उपलब्ध कराती है और वह उच्च शिक्षा प्राप्त करके बेरोजगार शिक्षित नहीं रहता। विज्ञान, तकनीकी व प्रबन्धन के अतिरिक्त मानविकी, कला और वाणिज्य के ऐसे अनगिनत क्षेत्र हैं जिनमें इन विषयों के निपुण कर्मियों की आवश्यकता होती है किन्तु उच्च शिक्षा में प्रशिक्षण के अभाव में रोजगार प्रदाता इन्हें लेने से हिचकते हैं और अन्य क्षेत्रों के अभ्यर्थियों की भर्ती कर उन्हें अपने कार्य के अनुसार प्रशिक्षण दे देते हैं। स्व-वित्त पोषित योजना (Self Finance Scheme) द्वारा विविध

विषयों के पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने की अनुमति देने से सरकार की शिक्षा प्रदान करने की जवाबदेही खत्म नहीं होती क्योंकि निजी संस्थान शिक्षण कार्य व परिणामों की उत्कृष्टता के लिये प्रतिबद्ध नहीं होते।

नियमित पाठ्यक्रम (BA, BCom, BSc) में भी व्यावहारिक कार्य के प्रशिक्षण हेतु इंजीनियरिंग आदि कॉलेजों की तरह प्रथम दो वर्षों में इंटर्नशिप और वर्कशॉप की अनिवार्यता रखी जाये इससे उन्हें भविष्य के लिये अपने रोजगार का क्षेत्र या स्वयं का कार्यक्षेत्र निर्धारित करने में मदद मिलेगी।

स्नातकोत्तर (M.A., M.Com., M.Sc.) विषयों में निष्णात होने के लिये विद्यार्थी विषय के विशेषज्ञ बन सकें इसके लिये विषय विशेष का कोर्सवर्क करने व लघु शोध प्रस्तुत करने की अनिवार्यता रखी जाये।

उच्च शिक्षा के स्तर पर विषय का विस्तार होता है तथा गहराई से विषय को समझने की जरूरत होती है। इसके लिये शिक्षकों के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। विदेशी संस्थानों में ई-शिक्षा द्वारा तथा तकनीकी साधन सुविधाओं का उपयोग शिक्षण कार्य को नियंत्रित करता है, विद्यार्थी की उपस्थिति को निश्चित करता है। विद्यार्थी शिक्षक से तय समय में विषय सम्बन्धी आवश्यक निर्देश तथा कक्षा-कक्षीय मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात् असाइन्मेन्ट प्राप्त करना, प्रस्तुतिकरण करना, आवश्यक सुधार करना और मूल्यांकन द्वारा परिणाम जानने के लिये विद्यार्थी को ऑनलाईन प्लेटफॉर्म दिया जाता है।

CBCS (Choice Based Credit System) द्वारा मूल्यांकन के अन्तर्गत कक्षा में अनुपस्थित रहने और परीक्षा में अनुपस्थित रहने पर विद्यार्थी को आगे शिक्षण प्राप्त करते रहने से नहीं रोका जाता किन्तु, निर्धारित अंक, आगे नियमितता रखने, परीक्षा देने, निर्धारित समय में कार्य में सुधार करने व अन्य योग्यताएँ पूरी करने पर प्रदान किये जाते हैं। ई-शिक्षा द्वारा शिक्षक शोध कार्य के साथ शिक्षण कार्य के दायित्वों को पूरा कर सकेंगे। CAS (Career Advancement Scheme) के तहत API Score (Academic Performance Indicator) में मूल रूप से शिक्षण कार्य, परिणाम तथा विद्यार्थी की उपलब्धियाँ ही सूचक के रूप में कार्य करते हैं।

आधुनिक उच्च शिक्षण संस्थानों को तकनीकी रूप से समृद्ध कर ई-कक्षा व ई-लेक्चर को मूलभूत साधन सुविधाओं के रूप में उपलब्ध करवाने की आवश्यकता है। विद्यार्थी कम समय में अधिक शिक्षण प्राप्त कर सकेंगे और विस्तृत पाठ्यक्रमों को पूरा किया जा सकेगा। ई-लाइब्रेरी में सभी पुस्तकें प्राप्त कर विद्यार्थी शिक्षण काल का पूरा लाभ उठा सकेंगे।

शोध कार्यों के विकास के लिये शोध व अनुसंधान को शिक्षण कार्य से अलग श्रेणीबद्ध किया जाना चाहिये। वैज्ञानिकों व शोधकर्ताओं के लिये विश्वविद्यालय से सम्बद्ध शोघ व अनुसंधान शालाएँ निर्मित करवायी जायें। आवश्यक अन्वेषणों का मुख्य आधार तैयार किया जाये। वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं को अपनी विशेषज्ञता के अनुसार कक्षाओं में नियमित व्याख्यानों के लिये आमंन्त्रित किया जाये। उनके शोध के स्तर और उपयोगिता के अनुरूप उन्हें बड़े आर्थिक लाभ देने से सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी। शोध कार्यो के साथ शिक्षण कार्य मजबूरी की जगह ऐच्छिक हो जायेगा और शोधकार्यों में संलग्नता बढ़ेगी तथा उत्कृष्ट शोध परिणाम आयेंगे। वहीं शिक्षण कार्यों में पदोन्नति का आधार शोध कार्य को नहीं रखे जाने से शिक्षण निर्बाध रूप से किया जा सकेगा तथा शैक्षणिक कार्यों के सूचक के रूप में केवल पास आउट की संख्या के स्थान पर विद्यार्थियों की योग्यता प्रकट करने वाले मापदण्ड, अधिकतम प्लेसमेन्ट प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या, सामाजिक कार्यों में संलग्नता, राजनीतिक, शैक्षणिक साहित्यिक व कलात्मक क्षेत्रों में अपनी योग्यता प्रगट करने वाले छात्रों की संख्या, विषय सम्बन्धी विशिष्ट लेखन कार्यों का उल्लेख भी सूचक के रूप में समाविष्ट किया जा सकता है।

उच्च शिक्षा में अच्छे प्रबन्धन के लिये IES (Indian Education System) कैडर प्रारम्भ करने का प्रस्ताव शिक्षा व्यवस्था को नियन्त्रित करेगा। उच्च शिक्षा में व्यवस्थाओं को नियन्त्रित करने में कुलपति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। कुलपति शिक्षा के अतिरिक्त किसी अन्य क्षेत्र से नहीं हो तथा बगैर किसी राजनीतिक हस्तक्षेप निर्धारित योग्यता व पात्रता पूरी करने पर ही कुलपति पद पर नियुक्ति प्रदान की जाये। VC द्वारा शिक्षण, प्रबन्धन तथा शिक्षा व्यवस्था पर निष्पक्ष नियन्त्रण रखे जाने से उच्च शिक्षा परिसर में राजनीति हावी नहीं हो सकेगी।

नई शिक्षा नीति द्वारा देश से मैकॉले शिक्षण पद्धति को समूल नष्ट करने के लिये अंकों पर आधारित मूल्यांकन व रटने पर आधारित परीक्षा पद्धति को समाप्त करना, शिक्षा क्षेत्र में निर्णायक कदम होगा। आजादी के बाद वामपंथी विचारकों व लेखकों द्वारा तय किये गये पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, विद्यार्थी के कॅरियर बनाने की संवेदनशील अवस्था में आत्मघाती सिद्ध हो रहे हैं। उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों को पूरी तरह बदलना शिक्षा विभाग का शिक्षानीति को समग्र बनाने की दिशा में ठोस कदम होगा। उच्च शिक्षा के ई-शिक्षा युक्त एवं शोध परक बनाकर विश्वस्तरीय शिक्षा प्रदान की जा सकेगी तथा भारत में नालन्दा व तक्षशिला के समकक्ष शिक्षण संस्थानों का पुनर्स्थापन होगा। 2018 की समग्र शिक्षा नीति आने वाले अनेक वर्षों तक सम्पूर्ण शिक्षा जगत को आगे ले जाने में बहुत बड़ा योगदान देगी। ❑

(व्याख्याता रसायन शास्त्र, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर)

देश के विकास में पंचायतों की भूमिका

पंचायती व्यवस्था का मूलभूत लक्ष्य यही है कि गाँवों से पुरानी व्यवस्था को परिवर्तित कर एक ऐसे समतामूलक समाज की रचना की जाय जिसमें असमानता, अन्याय व शोषण की लकीरें विद्यमान नहीं हो, समाज के सभी जाति, वर्ग महिला व पुरुष व बालकों के अधिकारों को संरक्षित व सुरक्षित करना संभव हो सके। बेरोजगारी गरीबी व भुखमरी जैसे दानवों से मुक्त गांव स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय के प्रतिबिम्ब हों। इस प्रकार से सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के मार्ग पर प्रशस्त गाँव ही देश के विकास की वास्तविक तस्वीर के प्रत्यक्ष साक्षी होंगे।

❑ **डॉ. अनीता मोदी**

गाँवों का विकास किये बिना देश का विकास संभव नहीं है, विकास की कल्पना अधूरी है। भारत की अर्थव्यवस्था ग्रामीण है क्योंकि देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज को एक ही सिक्के के दो पहलू कहना अतिशयोक्ति नहीं है। पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं ग्रामीणों की सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित करके ग्रामीण विकास के अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करना संभव है। गाँधी जी ने भी पंचायतों के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए उचित ही कहा था, ''सच्चा लोकतन्त्र वही है जो निचले स्तर पर लोगों की भागीदारी पर आधारित हो। यह तभी संभव है जब गाँव में रहने वाले आम आदमी को भी शासन के बारे में फैसला करने का अधिकार मिले।''

पंचायती व्यवस्था का मूलभूत लक्ष्य यही है कि गाँवों से पुरानी व्यवस्था को परिवर्तित कर एक ऐसे समतामूलक समाज की रचना की जाय जिसमें असमानता, अन्याय व शोषण की लकीरें विद्यमान नहीं हों, समाज के सभी जाति वर्ग, महिला, पुरुष व बालकों के अधिकारों को संरक्षित व सुरक्षित करना संभव हो सके। बेरोजगारी गरीबी व भुखमरी जैसे दानवों से मुक्त गाँव स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय के प्रतिबिम्ब हों। इस प्रकार से सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के मार्ग पर प्रशस्त गाँव ही देश के विकास की वास्तविक तस्वीर के प्रत्यक्ष साक्षी होंगे।

यद्यपि भारत में पंचायतों का इतिहास प्राचीन है किन्तु देश में संविधान के 73तथा 74 वें संशोधनों के माध्यम से मृतप्राय पंचायतों को जीवन प्रदान किया गया तथा संवैधानिक दर्जा दिये जाने की वजह से इनका अस्तित्व भी सुरक्षित हो गया है। इन संशोधनों के कारण इन पंचायतों को प्रशासनिक अधिकार प्राप्त होने के साथ ही वित्तीय संसाधनों की गारंटी प्राप्त हो गई। वर्तमान में पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास की प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है।

पंचायतें ग्यारहवीं सूची में सूचीबद्ध आर्थिक-सामाजिक विकास से संबंधित विभिन्न विषयों पर योजनाएँ बनाकर व उनके सफल क्रियान्वयन को सुनिश्चित करते हुए गाँवों में विकास का मार्ग प्रशस्त कर रही हैं। गाँवों में कृषि विकास व विस्तार, पशुपालन, मत्स्य पालन, वन विकास, लघु व कुटीर उद्योगों के विकास का भार पंचायतों के कंधों पर ही है। गाँवों में सफाई, स्वच्छता, चिकित्सा, शिक्षण व्यवस्था, बिजली, पानी व सिंचाई जैसी आधारभूत सुविधाओं का प्रावधान पंचायती संस्थाओं के द्वारा किया जाता है। इसके साथ ही महिला वर्ग, गरीब वर्ग व पिछड़े वर्ग के कल्याण हेतु विभिन्न कार्यक्रमों के क्रियान्वयन एवं सामुदायिक परिसम्पत्तियों के निर्माण, रख-रखाव व देखभाल की जिम्मेदारी पंचायतों पर है।

पंचायती संस्थाएँ गाँवों को सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से सशक्त बनाकर उनके सामाजिक-आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए कटिबद्ध हैं। इसी दिशा में, सरकार ने 27 मई, 2004 को पंचायती राज मन्त्रालय की स्थापना करके पंचायती राज व्यवस्था से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण समस्याओं के शीघ्र समाधान हेतु एक साहसिक कदम बढ़ाया है। गाँवों में विद्यमान बेरोजगारी, गरीबी व निरक्षरता जैसी भयावह समस्याओं के समाधान में पंचायतें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। देश में गरीबी उन्मूलन व रोजगार सृजन हेतु संचालित विभिन्न योजनाओं के सफल क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व पंचायतों को सौंपा गया है। पंचायतें जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना एवं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना के प्रभावी कार्यान्वयन में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। यही नहीं, ग्रामीण गरीबी, भुखमरी एवं बेरोजगारी जैसी जटिल समस्याओं के समाधान हेतु प्रवर्तित महत्त्वाकांक्षी राष्ट्रीय

ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना के कार्यान्वयन में पंचायतों का योगदान सराहनीय रहा है। इस योजना के संचालन से स्थानीय स्तर पर ग्रामीण बेरोजगारों को काम उपलब्ध होने से गाँवों से शहरों की तरफ पलायन प्रवृति पर अंकुश लगा है। पंचायतें 'महिला स्वयं सिद्धा योजना' को महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से संचालित करती हुई महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयास कर रही है। इसी भांति, 'सबको प्रारम्भिक शिक्षा' की प्राप्ति हेतु 'सर्व शिक्षा अभियान' को सफल बनाने में पंचायतों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

'सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान' के जरिए पंचायत संस्थाएँ ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के जीवन-स्तर में गुणात्मक सुधार लाने के लिए कटिबद्ध हैं। इस अभियान के अन्तर्गत सफाई, गृह स्वच्छता, शुद्ध जल, मल मूत्र के निस्तारण की प्रभावी व्यवस्था पर जोर दिया गया है। इसके साथ ही सुलभ शौचालयों का निर्माण भी प्राथमिकता के तौर पर किया गया है। गाँवों में पेयजल की समस्या का समाधान करने हेतु केन्द्र सरकार ने स्वजल धारा कार्यक्रम के क्रियान्वयन का दायित्व पंचायतों को सौंपा है। ग्राम पंचायतों के माध्यम से लागू किए गए इस कार्यक्रम के अन्तर्गत गाँवों में कुएँ, बावड़ी बनाने व हैण्ड पम्प लगाने पर होने वाली कुल लागत का 10 प्रतिशत अंश ग्रामवासियों तथा शेष 90 प्रतिशत केन्द्र सरकार द्वारा वहन किए जाने का प्रावधान रखा गया है। अनुसूचित जाति/जनजाति, कमजोर वर्गों के लोगों को तथा मुक्त बन्धुआ श्रमिकों को आवास उपलब्ध कराने के लिए पंचायतें प्रयासरत हैं। राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत संचालित तीन योजनाओं- राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना एवं राष्ट्रीय प्रसव लाभ योजना का कार्यान्वयन पंचायतों द्वारा ही किया जाता है। ग्रामीण-शहरी अन्तराल को पाटते हुए सन्तुलित सामाजिक-आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं के प्रावधान सम्बन्धी योजना (पुरा) का संचालन पंचायती संस्थाएँ प्रभावपूर्ण ढँग से कर रही हैं। इसी भाँति इण्डिया व भारत के बीच के अन्तर को पाटने के लिए गाँवों में आधारभूत सुविधाओं के विकास को निश्चित करने के लिए केन्द्र सरकार ने भारत निर्माण-योजना का शुभारम्भ दिसम्बर 2005 में किया। इस योजना के तहत गाँवों में छः प्रमुख क्षेत्रों यथा- सिंचाई, जलापूर्ति, आवास, सड़क, टेलीफोन एवं विद्युतीकरण के विकास हेतु निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। इस योजना के प्रभावी कार्यान्वयन में पंचायतों की भूमिका पर बल दिया गया।

पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण व्यवस्था का प्रावधान होने से महिला सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इस आरक्षण व्यवस्था के कारण ही महिलाएँ अपने घर की देहरी से बाहर कदम रखकर राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाते हुए अपनी क्षमता व कौशल का परिचय दे रही हैं। यही नहीं, निम्न जाति की महिलाएँ उत्पीड़न व शोषण के बावजूद अपने साहस व स्वाभिमान का परिचय देते हुए अगले चुनावों की तैयारी में जुटी हुई हैं।

इस प्रकार से पंचायत संस्थाएँ ग्राम विकास करते हुए गाँवों की समृद्धि एवं समुन्नति का आधार साबित हो रही हैं। इसी वजह से देश विकास के नए स्तरों को छू रहा है। पंचायतों के माध्यम से ग्रामीण समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर गाँवों में ही किया जा रहा है, जिससे समय, श्रम, धन व उर्जा की बचत होती है। पंचायती राज व्यवस्था के प्रभावी होने की वजह से गाँवों में राजनैतिक चेतना, राजनैतिक जागृति एवं राजनैतिक सहभागिता का सूत्रपात हुआ है। सत्ता में सदियों से शोषित दलित वर्ग, अनुसूचित जाति व जनजाति एवं पिछड़े वर्ग के लोगों की सत्ता में भागीदारी व नेतृत्त्व बढ़ने से उनमें नवीन शक्ति, सामर्थ्य व चेतना का संचार हुआ है।

इन सब उपलब्धियों के बावजूद भी पंचायती राज व्यवस्था के क्रियान्वयन में अनेक खामियाँ सामने आई हैं, जिनको दूर कर इस व्यवस्था को और अधिक सशक्त, प्रभावी एवं सफल बनाया जा सकता है। पंचायत चुनावों के दौरान हिंसात्मक घटनाओं, मतपेटियाँ छीनने, जोर-जबर्दस्ती व गुण्डागर्दी का बोलबाला रहता है, जिससे इन चुनावों की निष्पक्षता पर सवालिया निशान लग जाता है। इसी तरह, पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की आरक्षण व्यवस्था लागू करने के बावजूद भी वास्तविक सत्ता पुरुषवर्ग के हाथों में ही संकेन्द्रित रहती है। महिलाएँ निरक्षरता, जागरुकता की कमी एवं सामाजिक बन्धनों के कारण नाममात्र की अध्यक्ष, सरपंच या निर्वाचित प्रतिनिधि बन कर रह जाती हैं। गाँवों में विभिन्न वर्गों व जातियों के मध्य तनाव व वैमनस्यता की दीवारें विद्यमान होने के कारण पंचायतें अपना कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर पाती हैं।

वस्तुतः पंचायतीराज व्यवस्था ग्राम विकास के लिए आशा की किरण है। यह व्यवस्था वास्तविक अर्थों में तभी सफल व प्रभावी होगी जब गाँवों में शिक्षा व साक्षरता की रोशनी फैलेगी, ग्रामीणजन संकीर्ण भावनाओं, तुच्छ स्वार्थों व दलगत राजनीति से उपर उठकर व्यापक सोच व चिन्तन को अपनाने हेतु ग्रामों के विकास को सर्वोच्च वरीयता प्रदान करेंगे। पंचायती राज संस्थाएँ ईमानदार व पारदर्शी ढँग से सम्पूर्ण ग्रामीण कार्यक्रमों के संचालन हेतु कटिबद्ध होने पर ही गाँवों की धुँधली तस्वीर को चमका कर वास्तविक मायनों में 'इण्डिया शाइनिंग' की धारणा को मूर्त रूप प्रदान कर सकती है और तभी विकास का वास्तविक चेहरा सामने आएगा। ❑

(विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
राजकीय (पी.जी.) कॉलेज, खेतडी)

गुणात्मक शिक्षा हेतु कौशल विकास

❑ रामचन्द्र स्वामी

गुणात्मक शिक्षा का अर्थ है छात्र का चहुँमुखी विकास। कौशल विकास का अर्थ है शिक्षक द्वारा विद्यालय में ऐसा वातावरण तैयार करना, जिसमें बच्चे अपने अनुभवों के आधार पर शिक्षक के सहयोग से ज्ञान का सृजन कर सकें।

शिक्षक अपने अध्यापन कौशल के माध्यम से बालकों के सीखने की क्षमता में अपेक्षित संवर्द्धन कर कक्षा-कक्ष में आनन्ददायी शैक्षिक वातावरण तैयार कर सकता है।

वर्तमान समय में केन्द्र सरकार व राज्य सरकार ने विद्यालयों में शैक्षिक वातावरण सुधार हेतु बाल केन्द्रित शिक्षण विधा एवं शैक्षणिक उपलब्धियों में समतुल्यता के सरोकारों के आधार पर गुणात्मक बदलाव की रूपरेखा तैयार की है इस योजना के विकल्पों को शिक्षक ही अपने अध्यापन कौशल से जमीनी स्तर पर मूर्त रूप प्रदान कर, लक्ष्यों के अनुरूप गुणवत्ता को सही मायनों में स्थापित कर सकता है। वर्तमान समय में शिक्षा में जिस स्तर पर बदलाव अपेक्षित है इसकी नींव विकेन्द्रित रूप से क्षमताओं के विकास और शिक्षण कौशल विकास के द्वारा ही रखी जा सकती है।

गुणात्मक शिक्षा चिंतन और सीखने से संबंधित प्रक्रिया के सिद्धांतों पर आधारित है। शिक्षक अध्यापन कौशल से कक्षा-कक्ष में आनन्ददायी वातावरण बनाकर बच्चों के साथ आत्मीयता व मित्रतापूर्ण व्यवहार अपनाकर भयमुक्त वातावरण बनाकर खेल विधि व गतिविधि आधारित शिक्षण करवाकर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। एक आदर्श शिक्षक का कौशल छात्र के स्वयं करके सीखने की प्रक्रिया में सहयोग करता है।

अध्यापन कौशल वह विशिष्ट अनुदेशन प्रक्रिया है जिसे अध्यापक कक्षा-शिक्षण क्रम की विभिन क्रियाओं से संबंधित उपयोग करता है।

शिक्षक गुणात्मक शिक्षा में अपनी अहम भूमिका अदा कर सके इसके लिए उसके शिक्षण कार्य में निम्न कौशलों का होना अत्यावश्यक है।

1. **उद्दीपन भिन्नता कौशल**-शिक्षक को अपनी अध्यापन क्रियाओं को समय-समय पर बदलकर विद्यार्थियों का ध्यान पाठ्य-वस्तु में केन्द्रित कराने का प्रयास करना चाहिये जिससे विद्यार्थियों का ध्यान विषय वस्तु पर आकर्षित हो सके।
2. **विन्यास प्रेरणा कौशल**-शिक्षक को पाठ की प्रकृति के आधार पर अभिविन्यास कौशल का विकास कर बच्चों का ध्यान पाठ्य-वस्तु की तरफ केन्द्रित करना चाहिये।
3. **समीपता कौशल**- शिक्षक को पाठ्य-वस्तु का संक्षेपीकरण करके विद्यार्थियों का ध्यान विषय वस्तु की ओर आकर्षित कर स्व:अध्ययन के प्रति प्रेरित करना चाहिये।
4. **मौन व अशाब्दिक अन्त: प्रक्रिया कौशल**- कक्षा-कक्ष में शिक्षक को शाब्दिक क्रिया के साथ-साथ अशाब्दिक अन्त:प्रक्रिया-संकेत व हाव-भाव का प्रयोग कर विद्यार्थियों को शिक्षण कार्य के प्रति प्रोत्साहित करना चाहिये।
5. **पुनर्बलन-कौशल**- शिक्षक द्वारा शिक्षण कार्य को आनन्ददायी बनाने के लिऐ बच्चों के सकारात्मक व्यवहारों की प्रशंसा कर उनकी अनुक्रियाओं को स्वीकार कर व मान्यता देकर उनके पुनर्बलन को बढ़ाना चाहिये।
6. **प्रश्न की प्रवाहशीलता कौशल**- कक्षा-कक्ष में छात्र-शिक्षक में प्रश्नोत्तर के संवाद में प्रवाहशीलता व शिक्षण की प्रभावशीलता होनी चाहिये।
7. **खोजपूर्ण प्रश्न कौशल**-कक्षा शिक्षण में कई बार शिक्षक के द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर विद्यार्थी नहीं दे पाते हैं उस समय शिक्षक को उस प्रश्न के सहायक प्रश्नोत्तर करने चाहिये जिससे विद्यार्थी को उन से मूल प्रश्न का उत्तर खोजने में सहायता मिल सके।
8. **विद्यार्थी व्यवहार का अभिज्ञान कौशल**- एक प्रभावशाली शिक्षक को अधिक संवेदनशील होना चाहिये। शिक्षक को विद्यार्थियों की रुचिकर क्रियाओं के प्रति व्यवहार को पहचानकर शिक्षण कार्य करवाना चाहिये।

वर्तमान समय में केन्द्र सरकार व राज्य सरकार ने विद्यालयों में शैक्षिक वातावरण सुधार हेतु बाल केन्द्रित शिक्षण विधा एवं शैक्षणिक उपलब्धियों में समतुल्यता के सरोकारों के आधार पर गुणात्मक बदलाव की रूपरेखा तैयार की है इस योजना के विकल्पों को शिक्षक ही अपने अध्यापन कौशल से जमीनी स्तर पर मूर्त रूप प्रदान कर, लक्ष्यों के अनुरूप गुणवत्ता को सही मायनों में स्थापित कर सकता है। वर्तमान समय में शिक्षा में जिस स्तर पर बदलाव अपेक्षित है इसकी नींव विकेन्द्रित रूप से क्षमताओं के विकास और शिक्षण कौशल विकास के द्वारा ही रखी जा सकती है।

9. **दृष्टांत व उदाहरण प्रयोग कौशल–** शिक्षण कार्य को प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षक को गतिविधि आधारित शिक्षण करवाते हुए दृष्टांत व उदाहरणों का प्रयोग करना चाहिये ताकि विद्यार्थियों को सीखने में सुगमता प्राप्त हो सके।
10. **व्याख्या कौशल–** शिक्षक को शिक्षण कार्य करवाते हुए तथ्यों में बोधगम्यता का ध्यान रखते हुए नियम व सिद्धांतों के आधार पर सरल शब्दों में व्याख्या करनी चाहिये।
11. **सहभागिता कौशल–** शिक्षक को शिक्षण कार्य में बच्चों की अनुशासनात्मक व सकारात्मक सहभागिता को बनाये रखने के लिए सरल प्रश्नोत्तर करना, स्वयं करके सीखने में उनकी मदद करना, नयेपन के लिए प्रोत्साहित करना, उनकी जिज्ञासा को शांत करना तथा उनके व्यवहार को स्वीकार करना व उनके अनुभवों को शिक्षण में शामिल करना चाहिये।
12. **अनुदेशन– उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में मिलने का कौशल–**शिक्षक के अध्यापन करवाते समय पाठ्य वस्तु के उद्देश्यों का चयन कर, विषय वस्तु का विश्लेषण कर निर्धारित लक्ष्य का व्यावहारिक रूप प्रदान करना चाहिये।
13. **श्याम-पट्ट प्रयोग कौशल–** श्याम पट्ट शिक्षक का दाहिना हाथ कहलाता है। यह अध्यापन में दृश्य साधन के रूप में सर्वाधिक प्रयोग में आता है। अध्यापन कार्य में इसका उचित, सही व विधिपूर्वक प्रयोग कर पाठ्य वस्तु को प्रभावशाली बनाने में शिक्षक को निपुण होना चाहिये।
14. **कक्षा व्यवस्था कौशल–** शिक्षक को स्थानीय स्तरानुसार भौतिक, सामाजिक और शैक्षिक क्रियाओं व संसाधनों की समुचित व्यवस्था कर शिक्षण अधिगम के लिए उपयुक्त वातावरण बनाना चाहिये।
15. **दृश्य-श्रव्य सहायक सामग्री उपयोग कौशल–** शिक्षण को प्रभावशाली बनाने व पाठ्य वस्तु को बोधगम्य बनाने के लिए सहायक सामग्री का उपयोग करना चाहिये जिससे पाठ्य वस्तु रुचिकर बनती है और उद्देश्यों की प्राप्ति में मदद मिलती है।
16. **गृह कार्य देने का कौशल–** शिक्षक को पर्यवेक्षण अध्यापन को प्रोत्साहित करते हुए विद्यार्थियों को पाठ्य वस्तु की व्यवस्था व परिपाक के आधार पर गृह कार्य देना चाहिये जिससे छात्रों में शिक्षण के प्रति रुचि बढ़े और लेखन कार्य में त्रुटि सुधार कार्य पूर्ण हो।
17. **विद्यार्थियों को साथ लेकर चलने का कौशल–** कक्षा-शिक्षण में विद्यार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नताओं को ध्यान में रखकर सामूहिक शिक्षण कार्य करवाना चाहिये।
18. **उच्च स्तरीय व विकेन्द्र प्रश्नों का प्रयोग कौशल–** शिक्षक को कक्षा शिक्षण में विद्यार्थियों से नियमों, प्रत्ययों व सिद्धांतों के अनुरूप प्रश्नोत्तर करने चाहिये जिससे छात्रों में सामान्यीकरण व सृजनात्मक चिन्तन का विकास हो सके।
19. **व्याख्यान-संप्रेषण पूर्णता कौशल–** शिक्षक को शिक्षण की समुचित प्रविधियों व युक्तियों का प्रयोग करते हुए पाठ्यवस्तु का प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण करना चाहिये तथा उसे शुद्ध रूप में विद्यार्थियों तक पहुँचाने का प्रयास करना चाहिये।
20. **नियोजित पुनरावृति कौशल–** शिक्षक को शिक्षण कार्य के अन्त में खास बिन्दुओं की नियोजित रूप से पुनरावृति करनी चाहिये।

इस प्रकार गुणात्मक शिक्षण कार्य में शिक्षक अपने अध्यापन की क्रिया में बच्चों से प्रश्न पूछता है, व्याख्या करता है, समझाता है व सहायक सामग्री को बच्चों के सम्मुख प्रदर्शित करता है। वह छात्रों को शिक्षण कार्य में भाग लेने व प्रश्नोत्तर करने के लिए प्रेरित करता है। छात्रों में ज्ञान प्राप्त करने व स्वयं करके सीखने की आकाँक्षा उत्पन्न करता है। छात्रों की भावनाओं और दृष्टिकोणों को पहचानता है। छात्रों की क्रियाओं व उपलब्धियों का मूल्यांकन व आकलन करता है। एक आदर्श शिक्षक अपने अध्यापन कौशलों का उचित समय पर उचित प्रयोग करते हुए छात्र के चहुँमुखी विकास में शिक्षण कार्य का योगदान दे सकता है। ❑

(रा.उ.मा.वि., नत्थूसर गेट, बीकानेर)

उच्च शिक्षा में तदर्थवाद

❑ आर. के. सिन्हा

अब देश भर के कॉलेजों में नए सत्र के लिए विद्यार्थियों के दाखिले की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। प्रमुख विश्वविद्यालयों में, नामवर कॉलेजों में दाखिला लेने के लिए जबरदस्त मारामारी हो रही है। 90 प्रतिशत से अधिक अंक लेने वाले मेधावी छात्र-छात्राओं को भी यकीन नहीं हो रहा है कि उन्हें उनकी पसंद के कॉलेज और विषय में दाखिला मिल ही जाएगा। यह तो तस्वीर का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष तो और भी खराब और भयावह है। उसे जानकर अंधकारमय भविष्य की चिंता होने लगती है।

दरअसल, देश के शीर्ष यानी केंद्रीय विश्वविद्यालयों में अध्यापकों के पद बड़ी संख्या में रिक्त हैं। हाल ही एक आरटीआई से मिली जानकारी के अनुसार 40 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में अध्यापकों के 33 प्रतिशत पद खाली हैं। यह स्थिति बीते जनवरी माह तक की है। सबसे भयावह स्थिति इलाहाबाद और दिल्ली विश्वविद्यालयों की है। जहाँ क्रमशः लगभग 64 और 47 प्रतिशत पद भरे जाने हैं। यह स्थिति हमारे विश्वविद्यालयों में फैली अराजकता और अव्यवस्था को दर्शाती है। जब विश्वविद्यालयों में अध्यापक ही नहीं होंगे तो पढ़ाएगा कौन? फिर दाखिले के लिए कड़ी मशक्कत का भी क्या मतलब?

अध्यापकों की कमी को पूरा करने के लिए विश्वविद्यालयों ने एक आसान और भ्रष्ट रास्ता चुना हुआ है। वह है तदर्थ यानी एड हॉक नियुक्ति का। योग्यता से समझौता, कम पैसे देना और कभी भी निकाल देना केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में अब आम होता जा रहा है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में जूनियर रिसर्च स्कॉलर भी कक्षाएँ लेते हैं। उन्हें हर माह पढ़ाने के बदले में मात्र 30 हजार रुपए मानदेय मिलता है। यदि वे पढ़ाते रहेंगे तो क्या रिसर्च कर पाएंगे? दिल्ली विश्वविद्यालय में भी करीब 3,500 तदर्थ शिक्षक हैं। सभी साल दर साल पढ़ाते चले आ रहे हैं, स्थायी नौकरी की उम्मीद में। जबकि यहाँ स्थायी अध्यापकों की भर्तियाँ बीते एक दशक से लगभग बंद हैं। तदर्थ शिक्षकों को चार माह के बाद कुछ दिन के अंतराल के बाद फिर से नियुक्त कर लिया जाता है। अंधकारमय भविष्य से जूझने के कारण अनेक अध्यापक अवसाद और तनाव में हैं। एक तरफ इनकी पगार बेहद कम है, दूसरी तरफ इन्हें किसी तरह के लाभ भी नहीं मिल रहे हैं, जैसे कि मातृत्व अवकाश, प्रॉविडेंट फंड, कर्मचारी बीमा आदि। इनकी नौकरी कॉलेज के प्रधानाचार्य या फिर विभागाध्यक्षों के रहमो-करम पर ही चलती

दरअसल इन विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की तदर्थ नियुक्ति को बहाल रखने के पीछे मंशा यही दर्शाना है कि कक्षाएँ सही ढंग से चल रही हैं। लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। तदर्थ शिक्षक आर्थिक व मानसिक शोषण और अधिक काम के शिकार हो रहे हैं। इन विषम परिस्थितियों में किसी अध्यापक से अपना सर्वश्रेष्ठ देने की आशा कैसे की जा सकती है। जिस शख्स के सिर पर हर वक्त नौकरी जाने का खतरा मंडरा रहा हो, उससे आखिर क्या उम्मीद की जा सकती है? किसी भी विश्वविद्यालय के लिए यह जरूरी है कि तदर्थ शिक्षक कम से कम हों और समय-समय पर उन्हें नियमित किया जाता रहे।

है। यानी स्थायी सहकर्मी के समक्ष स्थायी अध्यापक की सारी योग्यताएँ पूरी करने वाले व्यक्ति की कोई मान्यता ही नहीं है। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में स्थायी अध्यापक डेढ़-दो लाख रुपए मासिक तक वेतन ले रहे हैं। उन्हें तमाम भत्ते और सुविधाएँ भी मिल रही हैं। अब रिटायर हो रहे अध्यापकों को भी लगभग एक लाख रुपए तक की पेंशन मिलती है।

दरअसल इन विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की तदर्थ नियुक्ति को बहाल रखने के पीछे मंशा यही दर्शाना है कि कक्षाएँ सही ढंग से चल रही हैं। लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। तदर्थ शिक्षक आर्थिक व मानसिक शोषण और अधिक काम के शिकार हो रहे हैं। इन विषम परिस्थितियों में किसी अध्यापक से अपना सर्वश्रेष्ठ देने की आशा कैसे की जा सकती है। जिस शख्स के सिर पर हर वक्त नौकरी जाने का खतरा मंडरा रहा हो, उससे आखिर क्या उम्मीद की जा सकती है?

किसी भी विश्वविद्यालय के लिए यह जरूरी है कि तदर्थ शिक्षक कम से कम हों और समय-समय पर उन्हें नियमित किया जाता रहे। उन्हें स्थायी अध्यापकों के बराबर वेतन और अन्य लाभ भी मिले। यह सब तभी अर्थपूर्ण है जबकि सभी शिक्षक अपनी कक्षाएँ नियमित रूप से लें। स्थायित्व के परिणाम यदि निष्क्रियता के रूप में सामने आते हैं तो शिक्षकों के विरुद्ध सख्त कार्रवाई भी होनी ही चाहिए।

दुर्भाग्यवश विश्वविद्यालयों के अनेक शिक्षक इस मानसिकता से ग्रस्त देखे जा रहे हैं कि स्थायी होने के बाद पढ़ाने की जरूरत ही नहीं है। उन्हें राजनीति और आंदोलन अधिक रुचिकर लगने लगते हैं। जबकि उन्हें अपने दायित्व का और बेहतर तरीके से निर्वहन करना चाहिए। लेकिन यह आम तौर पर होता नहीं है। आपको गिनती के ही ऐसे शिक्षक मिलेंगे जो स्थायी नौकरी के बाद भी गंभीर शोध कर रहे हों। इस मानसिकता पर कठोर प्रहार करने की आवश्यकता है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) को चाहिए कि सभी केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में लंबे समय से रिक्त पड़े पदों को भरने की दिशा में प्रभावी कदम उठाए। यों तो यूजीसी पर देश के तमाम सरकारी विश्वविद्यालयों के कामकाज से लेकर पाठ्यक्रम आदि पर नजर रखने और युवाओं के कॅरियर से खिलवाड़ कर रहे फर्जी विश्वविद्यालयों के खिलाफ कार्रवाई करने का दायित्व है, लेकिन वह भी बदइंतजामी का शिकार है। मौजूदा हालात से निपटने के लिए जरूरी है कि शीर्ष जिम्मेदार संस्था अंदरूनी बदलाव से देश में उच्च शिक्षा की जमीनी हकीकत को बदलने का आगाज करें। ❑

AJKLTF Delegation Aprises Union MOS PMO about issues of SSA Teachers

A delegation of All Jammu Kashmir and Ladakh Teachers Federation under the aegis of Akhil Bharatiya Rashtriya Shaikshik Mahasangh led by Sh Rattan Sharma State General Secretary met on 30 June, 2018 with the Union Minister of State for PMO Dr. Jitendra Singh and submitted him the memorandum.

The delegation demended redressal of issues of salary of teachers and Head teachers working under SSA schemes . These teachers were appointed under Rehbar-I--Taleem Scheme of the J&K Govt. on Rs 1500 honorioum per month for five years and regularised as general line teachers after five years of regular service but their salary is being paid from the SSA scheme of the Union Govt.

Their salary is paid after gap of three to four months which led them to many hardships and also disrupts the proper teaching learning process . They are not able to shoulder the responsibilities of their family members and are at the verge of starvation. These teachers are not able to run smoothly the Mid Day Meals scheme in their respective schools as they have to spend from their own pocket for cooking expenditures. Last year Finance Minister announced in the Assembly that their salary be delinked from the SSA scheme to the State Budget but inspite of that they did nothing on grounds.

Mr. Rattan Sharma said that State Government's step motherly treatment with the SSA teachers in implementation of 7th Pay Commission led these teachers under depression and mental trauma as the state Govt.have given benefits of 7th Pay commission to all its employees except of SSA /RMSA teachers .

Many ReT teachers are on the roads for the last ten months demanding redressal of all the issues of salary and implementation of benefits of 7th Pay commission to the ReT teachers appointed under SSA/RMSA schemes including the Head Teachers. But the State Govt. didnot resolved the issues and led more than 40000 teachers to adopt the path of agitation and dharnas . This irresponsible attitude of the State Govt. affecting the teaching fraternity and studies of the students .

The AJKLTF demanded delinking of salary of teachers from SSA scheme to the State Budget as announced by the Finance Minister in 2017 in the Assembly and also the benefits of 7th Pay commission to all the teachers including the Head teachers working under SSA/RMSA schemes .

The Union Minister of State for PMO Dr. Jitendra Singh gave a patient hearing and assured the delegation that he will personally took up the matter with the State Govt. and their genuine demands be resolved very soon . He said that teachers are the nation builders and are icons of society and its the prime duty of the Govt.to resolve their genuine demands.

Others who were part of delegation included Pardeep Sharma, Manjeet Singh, Brahm Dutt Sharma , Vipan Sharma and many others.

स्कूल मत भेजना

❑ संदीप जोशी

शीर्षक पढ़कर आपका चौंकना स्वभाविक है कि एक शिक्षक यह कह रहा है –स्कूल मत भेजना।

आप ठीक समझ रहे हैं। मैं एक शिक्षक हूँ इसीलिए कह रहा हूँ कि अपने अबोध शिशु को छोटी सी उम्र में, बहुत जल्दी स्कूल मत भेजना । उसे कम से कम 4 वर्ष का तो हो जाने दीजिए।

परीक्षा परिणामों का दौर समाप्त हो गया है और नए सत्र की तैयारियाँ प्रारंभ हो गई हैं।

बाजार में ढाई–तीन वर्ष के बच्चों के लिए स्कूल बैग और पोशाक खरीदते युवा अभिभावक दिखने लगे हैं।

घर में बच्चे के जन्म के साथ ही इस विषय पर बहुत से परिवारों में विचार विमर्श प्रारंभ हो जाता है ... कौन से स्कूल में भेजना है आदि–आदि कब स्कूल भेजना है ।

इस पर जरा भी विचार नहीं करते। पूरी निर्दयता से आजकल के अभिभावक अपने दो – ढाई वर्ष के बच्चों को भी स्कूल भेजने की तैयारी में है ।

पता नहीं किस बात की होड़ में लगे हैं । पूछने पर बताते हैं आसपास के उन–उन परिवारों के बच्चे जो 2 वर्ष, ढाई वर्ष के हैं, स्कूल जाने लगे हैं इसलिए हमें भी भेजना है ।

कब तक दूसरों की नकल करते रहेंगे, अपना खुद का एक श्रेष्ठ उदाहरण क्यों नहीं रखते ।

लोग आपको देखकर अनुसरण करें कि देखिए उनका बच्चा 5 साल का हो कर स्कूल जाने लगा है। अत्याधुनिक परिवारों में तो 5 वर्ष में एडमिशन का कहते हैं तो हँसने का माहौल बन जाता है। उन्हें लगता है यह कोई मजाक है। पर वास्तव में बालक को विद्यालय भेजने की आयु पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

अक्सर पेरेंट्स सोचते हैं कि बच्चों को ढाई साल की उम्र होते ही प्ले स्कूल में डाल दें। ताकि बच्चा कुछ सीख जाएगा। बच्चों को इंटरव्यू के लिए तैयार करने लगते हैं। छोटे बच्चों को एडमिशन की रेस में शामिल करने के लिए तैयार करते हैं लेकिन क्या आप जानते हैं ये बच्चों के लिए ठीक नहीं है। जी हाँ, सारे शिक्षा मनोवैज्ञानिक और तमाम शोध भी यही कहते हैं।

कुछ समय पूर्व हुए एक रिसर्च के मुताबिक, बच्चों को जल्दी स्कूल भेजने से उनके व्यवहार पर दुष्प्रभाव होता है। शोध के मुताबिक, बच्चों को स्कूल भेजने की उम्र जितनी ज्यादा होगी बच्चे का खुद पर उतना ही ज्यादा आत्मनियंत्रण होगा और बच्चा उतना ही हाइपर एक्टिव होगा।

अपने परिवार में, अपने मिलने वालों के परिवार में यदि कोई बालक विद्यालय में प्रवेश करने के निकट है तो उन्हें बताइए 5 वर्ष से पहले विद्यालय में प्रवेश न कराएँ। स्कूल में जाने पर बच्चे को नए अनुभवों, शारीरिक, सामाजिक, व्यावहारिक और एकेडमिक चुनौतियों और अपेक्षाओं में सामंजस्य बिठाना होता है और इनका सामना करना होता है। इसलिए अगर बच्चा इनके लिए तैयार नहीं है और उसे इनका सामना करना पड़े तो इसका बहुत नकारात्मक असर बच्चे पर पड़ता है। उसे स्कूल और पढ़ाई से चिढ़ हो सकती है। वह पढ़ाई में कमजोर रह सकता है। वह तनाव में भी आ सकता है और उसे अवसाद घेर सकता है।

स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी द्वारा एक शोध के मुताबिक, बच्चों को 5 की उम्र के बजाय 6 या 7 की उम्र में स्कूल भेजना चाहिए। रिसर्च में पाया गया कि जिन बच्चों को 6 साल की उम्र में किंडरगार्टन भेजा गया था। 7 से 11 साल की उम्र में उनका सेल्फ कंट्रोल बहुत अच्छा था।

साइक्लोजिस्ट मानते हैं कि सेल्फ कंट्रोल एक ऐसा गुण है जिसे बच्चों के शुरुआती समय में ही डवलप किया जा सकता है। जिन बच्चों में सेल्फ कंट्रोल होता है वे फोकस के साथ आसानी से किसी भी परेशानी या चुनौतियों का सामना कर पाते हैं।

स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के शोधकर्ता थॉमस डी और हैन्स हेनरिक सीवर्जन ने अपनी इस शोध के नतीजों के लिए दानिश नेशनल बर्थ कोवर्ट डीएनबीसी से डाटा इकट्ठा किया। रिसर्च के दौरान 7 साल के बच्चों की मेंटल हेल्थ पर फोकस किया गया। इसके लिए तकरीबन 54,241 पेरेंट्स का फीडबैक लिया गया. वहीं 11 साल की उम्र के बच्चों की मेंटल हेल्थ के लिए 35,902 पेरेंट्स के फीडबैक लिए गए।

शोध के नतीजों के दौरान पाया गया कि जिन बच्चों ने एक साल देर से स्कूल जाना शुरू किया था उनका हाइपरऐक्टिव लेवल 73 पर्सेंट बेहतर था।

अभी कुछ समय पहले एक बड़े समाचार पत्र में एक खबर छपी थी जिसमें दुनिया के विभिन्न विकसित देशों के बच्चों की विद्यालय में प्रवेश की आयु दी हुई थी । कुछ देशों में 5 वर्ष, कुछ में 6 वर्ष और एक दो देश में तो 7 वर्ष की उम्र में विद्यालय में प्रवेश की बात बताई गई ।

भारतीय दर्शन भी यही मानता आया है। हमारे यहाँ प्राचीन काल से विद्या आरंभ करने की अर्थात औपचारिक शिक्षा प्रारंभ करने की आयु 7 वर्ष मानी गई है।

उससे पूर्व औपचारिक शिक्षा प्रारंभ करने से शिक्षा और शिक्षार्थी दोनों की हानि होती है।

7 वर्ष की आयु से प्रारंभ करके 25 वर्ष की आयु तक अध्ययन करना अर्थात कुल 18 वर्ष तक का अध्ययन। पर्याप्त समय है यह। वर्तमान समय के हिसाब से देखें तो स्नातकोत्तर (PG) तक के अध्ययन के लिए 17 वर्ष चाहिए। फिर इतनी जल्दी बाजी क्यों....?

आप सभी से निवेदन है, अपने परिवार में, अपने मिलने वालों के परिवार में यदि कोई बालक विद्यालय में प्रवेश करने के निकट है तो उन्हें बताइए 5 वर्ष से पहले विद्यालय में प्रवेश न कराएँ।

बहुत जल्दी है तो 4 वर्ष की आयु में बालबाड़ी या किंडरगार्टन में प्रवेश दिला सकते हैं।

इससे कम आयु में बच्चों को स्कूल भेजने वाले अभिभावक निसंदेह उन बच्चों के दुश्मन ही हैं जो अज्ञानतावश, मूढ़तावश, अहंकार वश या होड़ाहोडी के चक्कर में फँस कर अपने बच्चों का बचपन तो खराब कर ही रहे हैं उनका भविष्य भी खराब कर रहे हैं। और साथ साथ अभिभावक अपना स्वयं का भी भविष्य ....?

शास्त्रीय नियम तो 7 वर्ष का ही है बहुत आवश्यक हुआ तो 4 या 5 वर्ष । इससे कम उम्र में भेजने की जल्दीबाजी तो कतई नहीं करनी चाहिए ।

जैसे सड़क पर चलने के नियम बने हुए हैं, सब उनका पालन करेंगे तो दुर्घटनाएं नही घटेगी किंतु हम हेलमेट भी नहीं पहनेंगे, हाथ छोड़कर चलाएँगे या बहुत तेज गति से चलाएंगे तो दुर्घटना घटनी ही है ।

ऐसे ही शिक्षा के बारे में भी हैं, शिक्षा प्राप्त करने की उम्र के बारे में शास्त्रीय वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक नियमों को नहीं मानेंगे तो दुर्घटनाएँ घटनी ही हैं, विकृतियाँ आनी ही हैं और बालकों में यह विकृतियाँ बढ़ते-बढ़ते परीक्षा में असफल होने पर आत्महत्या तक पहुँच जाती हैं।

स्कूल में जाने पर बच्चे को नए अनुभवों, शारीरिक, सामाजिक, व्यावहारिक और एकेडमिक चुनौतियों और अपेक्षाओं में सामंजस्य बिठाना होता है और इनका सामना करना होता है। इसलिए अगर बच्चा इनके लिए तैयार नहीं है और उसे इनका सामना करना पड़े तो इसका बहुत नकारात्मक असर बच्चे पर पड़ता है। उसे स्कूल और पढ़ाई से चिढ़ हो सकती है। वह पढ़ाई में कमजोर रह सकता है। वह तनाव में भी आ सकता है और उसे अवसाद घेर सकता है।

5 वर्ष पूर्व बालक को जो पढ़ाना है , घर पर ही पढ़ाई हो ।

'परिवार ही विद्यालय' की संकल्पना का पालन करना चाहिए। ढाई 3 वर्ष का बालक तो औपचारिक शिक्षा के लिए कतई तैयार नहीं होता ।

न शारीरिक रूप से ना मानसिक रूप से। और इस बात को दुनिया के सारे शिक्षा शास्त्री और मनोवैज्ञानिक मानते हैं । अतः निवेदन है कि यदि परिवार को बचाना है , समाज को बचाना है, संस्कृति को बचाना है, देश को बचाना है ... तो बालक के बचपन को बचाइए।

4- 5 वर्ष तक उसे घर में ही खेल-खेल में सीखने दीजिए। उसका शारीरिक और मानसिक विकास होने दीजिए। यदि यह ठीक हो गया तो दुनिया की सारी शिक्षा ग्रहण करने में उसे बहुत ज्यादा समय नहीं लगेगा। पुनः निवेदन है कि चार वर्ष से छोटी आयु के बच्चों को... स्कूल मत भेजना।❑

(व्याख्याता, आ.रा.उ.मा. विद्यालय,
रेवत, जिला जालोर, राज.)

वास्तव में भारतीय गुरु परम्परा मनुष्य जीवन के उद्देश्यों के साथ मेल खाती हुयी श्रेयस्कर मार्ग की प्रवर्तक है। भारत के उन्नत वैभव व उत्कृष्ट शास्त्रीय परम्परा, विस्तृत एवं उन्नत साहित्य, कला साधना, आध्यात्मिक रहस्य इत्यादि सभी में भारतीय गुरु परम्परा ने ही भारत को शिखर पर पहुँचाया है। इस प्रकार की प्रणाली के ज्ञाता होने पर भी आज की मैकालयी शिक्षा पद्धति को ढोना हमारे लिये दुर्भाग्य की बात है। आज की शिक्षा प्रणाली में उत्कृष्ट गुरु परम्परा के वैशिष्ट्यों को समाविष्ट कर उसे सार्थकता प्रदान करने की आवश्यकता है।

गुरुपूर्णिमा विशेष

श्रेय साधिका भारतीय गुरु परम्परा

❑ डॉ. ओमप्रकाश पारीक

गुरु शब्द गृ धातु से कु प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। गृणाति उपदिशति धर्म इति गुरुः, गिरति अज्ञानमिति गुरुः, अर्थात् जो धर्म का उपदेश दे, अज्ञान रूपी तम का विनाश कर ज्ञान रूपी ज्योति से प्रकाश करे, वह गुरु है। आदि काल से ही चली आ रही भारतीय गुरु परम्परा मनुष्य को श्रेय व प्रेय में अन्तर कर श्रेय मार्ग की ओर ले जाती हुयी परं कल्याण कारक रही है। महर्षि वेदव्यास जी ने कूर्म पुराण में भारतीय परम्परा में दस प्रकार के गुरुओं का उल्लेख किया है –

उपाध्यायः पिता माता ज्येष्ठो भ्राता महीपतिः।
मातुलः श्वशुरश्चैव मातामहपितामहौ
वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च सर्वे ते गुरवः स्मृताः।।

(कौर्म. उत्तर 12/26)

उपाध्याय, पिता, माता, बड़ा भाई, राजा, मामा, श्वसुर, नाना, बाबा तथा अपने वर्ण में ज्येष्ठ (बड़ा) चाचा, ताऊ ये दस गुरु कहे गये हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि जो भी हमारे से ज्येष्ठ व श्रेष्ठ हैं और हमें सन्मार्ग की ओर ले जाता है वह हमारे लिये गुरु है।

मानव जीवन के अपने वैशिष्ट्य हैं यथा शरीर का क्षणभंगुर होना, आत्मा का ही अमर होना, अन्य भौतिक पदार्थों का नाशवान होने के साथ मनुष्य के लिये परिणाम में दुखदायी होना इत्यादि अतः मनुष्य के कल्याण का मार्ग जानना व मनुष्य को उस मार्ग पर प्रवृत्त करना आवश्यक था। इसलिये वैदिक काल में ही हमारे भारतीय तत्त्व दृष्टा ऋषियों ने मानव जीवन के उद्‌देश्यों की पूर्ति करने वाले सत्य-सनातन उपायों, सिद्धान्तों और व्यवहारों को ढूंढ़ लिया था इस कारण से वे ऋषिगण वैदिक मंत्रों के दृष्टा हैं। वेदों की ऋचाओं में भरे पवित्र व लोक कल्याणकारक ज्ञान को मानव के मन-बुद्धि व आचरण में ग्राह्य करवाने का कार्य योग्य गुरुओं द्वारा ही संभव था, अतः शिक्षा प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय की विद्याध्ययन प्रणाली का प्रमुख कार्य बालक की नैसर्गिक (जन्म-जात) शक्तियों का विकास कर उसे सच्चे अर्थों में मानव बनाना था तथा उसे जीवन की समस्याओं, बन्धनों से मुक्त करने के योग्य बनाना था। विद्यार्थी को श्रुति परम्परा (सुनकर दोहराना) के आधार पर वेदमंत्रों को कंठस्थ करवा उनके मर्म को समझाकर तदनुसार आचरण करवाया जाता था। सुप्रसिद्ध गायत्री मंत्र में गुरु द्वारा भगवान सविता के वरणीय तेज का ध्यान करने का उल्लेख है तथा यह प्रार्थना की गयी है कि भगवान् सविता हमारी बुद्धि को सत् प्रेरणा प्रदान करे-

'ऊँ भूर्भूवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्'

(शु. यजु. 8/3)

अर्थात् पृथ्वीलोक, अन्तरिक्ष लोक और स्वर्गलोक में व्याप्त, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप जगत् के स्रष्टा उस श्रेष्ठ परमात्मा (सूर्य देव) के सर्वोत्कृष्ट तेज का हम ध्यान करते हैं, वे हमारी बुद्धि को प्रेरित करें। उस समय धर्म-अर्थ-काम मोक्ष (पुरुषार्थ चतुष्टय) की प्राप्ति के लिये गुरु अपने शिष्यों को विद्याभ्यास करवाते थे तथा मिलकर लोककल्याण हेतु प्रार्थना करते थे, हम एक साथ मिलकर एक दूसरे की रक्षा करें, साथ मिलकर भोजन करें, साथ मिलकर श्रेष्ठ कर्म करें, हमारा अध्ययन तेजस्वी बने और हम परस्पर द्वेष न करें। इस प्रकार के उत्तम विचारों से युक्त गुरु शिष्य ही पवित्र परम्परा के वाहक बनते हैं।

ऊँ सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ऐसी परम्परा में आचार्य को देव मानकर उनकी आज्ञाओं का अनुसरण किया जाता था **'आचार्यः देवो भव'** (तैति.उप.1/11)

वेद और उपनिषद् युगीन तत्त्वबोधक अज्ञान निवारक श्रेष्ठ गुरुपरम्परा का प्रवाह बढ़ता गया तथा सन्मार्ग दिखाकर मोक्ष तक ले जाने वाले गुरु में ब्रह्मा विष्णु-महेश की पवित्र त्रिमुर्ति के दर्शन कर गुरु परंब्रह्म स्वरूप माने जाने लगे-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

(गर्ग संहिता 4/1/15)

महिमाशाली इस गुरु परम्परा में जीव-जगत् व ईश्वर के श्रेष्ठ ज्ञान को अपने-अपने ढंग से समाज में ग्राह्य करवाने व कल्याण हेतु विभिन्न दर्शन व सम्प्रदायों का जन्म हुआ। जिससे भारतीय गुरुपरम्परा का और अधिक अभ्युत्थान हुआ, महर्षि गौतम का न्याय दर्शन, महर्षि कणाद का वैशेषिक दर्शन, महर्षि कपिल का सांख्य दर्शन, महर्षि पतंजलि का योग दर्शन महर्षि जैमिनी का मीमांसा दर्शन, आदि शंकराचार्य का वेदान्त दर्शन ये सभी छह वेदों में विश्वास करने से षड् आस्तिक दर्शन कहलाये। चार्वाक-बौद्ध और जैन वेदों में विश्वास न करने से नास्तिक दर्शन माने गये। लेकिन गुरु परम्परा सभी में सम्मानित थी। उपनिषदों के ज्ञान को आत्मसात् कर आदिशंकराचार्य ने जो वेदान्त दर्शन का प्रतिपादन किया उसके पश्चात् विभिन्न भक्ति संप्रदायों का जन्म हुआ। भगवान् शंकराचार्य ने जीवात्मा को ब्रह्म मानकर बाह्य जगत् को मिथ्या सिद्ध किया-

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः,

अर्थात् ब्रह्म सत्य है यह जगत्, मिथ्या है और जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप ही है अतः जीवात्मा को अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर मोक्ष प्राप्त करनी चाहिये। शंकराचार्य की इस गूढ़ दार्शनिक साधना को करने का सामर्थ्य वश की बात नहीं थी अतः इस वेदान्त दर्शन के पश्चात सामान्य जनमानस के जीवन की सार्थकता एवं लोककल्याण हेतु श्री रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त दिया, जिसमें चित् (जीवात्मा) और अचित (प्रकृति) दोनों को ईश्वर के साथ संयुक्त विशेषण रूप में माना तथा संसार को भी मिथ्या नहीं माना किन्तु ईश्वर की शरणागति को ही कल्याण का साधन बताया। मध्वाचार्य ने द्वैतवाद का सिद्धान्त दिया जिसमें आत्मा और परमात्मा दो भिन्न सत्ताएँ मानी गयी तथा ईश्वर को समस्त गुणों से पूर्ण मानते हुये भगवान विष्णु को ब्रह्म माना। वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत का सिद्धान्त दिया और बताया कि ब्रह्म माया के प्रपञ्च से रहित शुद्ध सर्वज्ञ सच्चिदानन्द स्वरूप है तथा जीवात्मा पर मुक्ति हेतु भगवान (कृष्ण) स्वयं अनुग्रह करते हैं। निम्बकाचार्य ने द्वैताद्वैत सिद्धान्त दिया जिसमें बताया कि जीव ब्रह्म से भिन्न भी है तथा अभिन्न भी और इनमें भेद व अभेद अचिन्त्य अर्थात् जिस पर विचार नहीं किया जा सकता इस प्रकार का है ब्रह्म एव उसकी शक्ति राधा कृष्णस्वरूप है। श्रीरामानन्दाचार्य जी से रामानन्द संप्रदाय का उद्‌भव हुआ, जिसमें भगवान राम को ही परं करुणानिधान जगत् कल्याणकारक स्वीकार करते हुये भक्ति का उपदेश दिया, इनके शिष्यों में सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के थे। श्रीरामानन्द जी ने जीव मात्र को उसकी जाति वंश, शक्ति का विचार किये बिना ज्ञान प्राप्त करने तथा आत्मकल्याण का अधिकारी माना।

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः
शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत् प्रभोः।
नोपेक्षते तत्र कुलं बलं च नो
न चापि कालो न हि शुद्धतापि वै।।

(वैष्णव म.भा. 4/51)

श्री रामानन्दाचार्य के 12 प्रमुख शिष्य थे जो कि सामाजिक समरसता के भी उदात्त उदाहरण हैं अनन्तानन्द जी, कबीर जी, सुखानन्द जी, सुरसुरानन्द जी, नरहर्यानन्द जी, पीपा जी, भावानन्द जी, रैदास जी, धन्ना जाट, सेना नाई, गालवानन्द जी, यागानन्द जी।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने गौडीय सम्प्रदाय प्रतिपादित किया जिसके अनुसार पाँच तत्त्व ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल, कर्म माने गये तथा ज्ञान का विषय परात्पर ब्रह्म श्री कृष्ण को माना तथा उनकी अहेतुकी (बिना स्वार्थ) के भक्ति को कल्याण का मार्ग बताया।

वस्तुतः वैदिक मन्त्रों का विधान एवं सरहस्य परम्परा से जो उपदेश किया जाता है वह सम्प्रदाय कहलाता है-

सम्यक् प्रकृष्टदानं च मंत्रादेः श्रुतिमूलकम्।
इत्यर्थः सम्प्रदायेति शब्दस्योक्तः महर्षिभिः।।

इस प्रकार गुरु परम्परा से प्राप्त होने वाले प्रचलित उपदेश को सम्प्रदाय कहा जाता है जो कि अनादि काल से चला आ रहा है एवं जिसका वर्णन वेद-उपनिषद् संहिता आदि शास्त्रों में भी उपलब्ध होता है।

गुरुपरम्परा में विधिवत् विद्या प्राप्ति हेतु बाल्यावस्था में ही विद्यार्थी का उपनयन संस्कार किया जाता था। परन्तु आयु के किसी भी समय सच्चा गुरु बनाकर आत्मकल्याण किया जा सकता था। उपनयन संस्कार में उप-समीप नयन= ले जाना, बालक को विद्या प्राप्ति हेतु गुरु के समीप ले जाने का संस्कार उपनयन संस्कार कहलाता है। आचार्य विद्याध्ययन हेतु लाये गये उस बालक को उसी प्रकार धारण कर लेता था जैसे माता शिशु को गर्भ में धारण कर लेती है तथा इस प्रकार के शिष्य को देखने देवता भी आते थे। -

आचार्यः उपनयमानो ब्रह्मचारिणं
कृणुते गर्भमन्तः
तं रात्रीस्तिस्रं उदरे बिभर्ति तं जातं
दृष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।(अथर्ववेद 11/3/5)

उपनयन संस्कार पश्चात् गुरु (आचार्य) शिष्य को शुद्धि, आचरण, अग्नि कार्य (यज्ञ) सन्ध्या उपासना की शिक्षा देते थे तत्पश्चात् 24 वर्षों तक वेदों का अध्यापन एवं पच्चीसवें वर्ष में समावर्तन संस्कार करने के उपरान्त विद्यार्थी गृहस्थ में लौटता था। इसके अतिरिक्त जो विद्यार्थी आजीवन विद्या अभ्यास करते थे वे गृहस्थ में न लौटकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाते थे।

भारत को विश्व गुरु का पूजनीय स्थान प्रदान करने का श्रेय गुरु परम्परा को जाता है यहाँ के तत्त्वदृष्टा ऋषियों, मनीषियों की अतुलनीय प्रज्ञा ने जीवन और जगत् के गहन से गहन रहस्यों को उद्घाटित कर मनुष्य के कल्याण के मार्ग खोजे हैं जिससे सम्पूर्ण विश्व उपकृत हुआ है। वस्तुत: जीवन के सर्वस्व प्राप्ति का मार्ग आध्यात्मिक ज्ञान है। भौतिक वस्तुओं के सुखकारी प्रयोग की कुञ्जी भी आध्यात्मिकता में ही निहित है।

इस प्रकार के परं कल्याणकारी ज्ञान का दाता गुरु ही हो सकता है। गुरु कोई व्यक्ति नहीं अपितु वह स्वयं ब्रह्म स्वरूप होता है और शिष्य को ब्रह्म का भान करवाता है। वही शिष्य पुन: उस गुरु परम्परा का वाहक बनता है गुरु शिष्य सम्बन्ध बहुत ही सूक्ष्म होता है, गुरु अपने शिष्य की आत्मा को आत्मसात् कर उसे ज्ञान प्रदान करता है अत: गुरु के देहत्याग के अनन्तर भी शिष्य को गुरु की प्रेरणा निरन्तर मिलती रहती है। भारतीय परम्परा अनुसार इस प्रकार का सच्चा गुरु बिना हरि (भगवान्) की कृपा के नहीं मिलता–

'बिन हरिकृपा मिलहिं न हि संन्ता'

यह सामर्थ्य गुरु में ही होता है कि वह आत्मा में परमात्मा के दर्शन करवाता है–

वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्
याभ्यां बिना न पश्यन्ति
योगिन: स्वान्तस्थमीश्वरम्

भारतीय गुरु परम्परा में भिन्न–भिन्न साधनायें और योगिक पद्धतियाँ प्रचलित है अत: उनमें तत् प्रकार के निष्णात् गुरु और विशेषज्ञ भी भिन्न–भिन्न होते हैं। नाथ–योगी, सहज योगी, वज्रयान तथा तांत्रिक साधनाओं में सिद्धगुरु ही उस विद्या में शिष्य को पारंगत बनाता है। भारतीय संतपरम्परा अपने आप में गुरु परम्परा ही है। संतों की वाणियों में सद्गुरु ही संसार सागर से तारणहार माने गये हैं। वैदिक युग से प्रवाहित होती गुरुपरम्परा विभिन्न कालखण्डों में नवीन दृष्टि से समाज का उत्थान करती हुयी मध्यकाल में आते–आते सन्तपरम्परा के रूप में अत्यधिक समृद्ध हो गयी। अमृत के कुएँ से अमृत पीने में वही सक्षम होता था जो सद्गुरु (सन्त) के सानिध्य में रहता था। लेकिन जो निगुरा होता था वह तो प्यासा ही चला जाता था–

गगन मंडल में अंधा कुआ
तहां अमृत का वासा।
सगुरा होई सो भरि–भरि पीवै,
निगुरा जाय प्यासा।।

(गोरखनाथ बानी)

लालदास जी ने भी गुरु की महिमा का यों ही बखान किया है–

सांचा सद्गुरु राम मिलावै,
सब कुछ काया माहि दिखावै
(दादूवाणी)

गुरु का ज्ञान ही अन्तर्मन के पट को खोलता है चाहे कितने भी शास्त्र पढ़ लें पर तत्त्वज्ञान गुरु के द्वार ही सम्भव है–

गुरुपदेशत: ज्ञेयं न ज्ञेयं शास्त्रकोटिभि:

इस प्रकार के गरिमामय गुरु और शिष्य सम्बन्ध पूर्णरूप से निस्वार्थ एवं केवल ज्ञान साधना के लिये होने चाहिये। अत: गुरु में लोभ–लालच व वासना नहीं हो यदि गुरु शिष्य लालच से प्रेरित होंगे तो पत्थर की नाव पर चढ़कर नदी पार करने के समान कपट व्यवहार के कारण बीच में ही डूब जायेंगे–

न गुरु मिल्या न सिष भया
लालच खेल्या डाव
दून्यूं बूडे धार में चढ़ि पाथर की नांव।

(कबीर ग्रन्थावली)

गुरु अपनी गरिमा व महत्त्व के अनुसार आचरण से समाज में गोविन्द से भी बढ़कर स्थान पाता है। कबीरदास जी ने गुरु की महिमा का बखान करते हुये हरि के रूठने पर गुरु को ठौर बताया किन्तु गुरु के रूठे कोई ठौर नहीं होती इस प्रकार गुरु को हरि से भी बढ़कर स्वीकार किया–

गुरु गोविन्द दोऊँ खड़े काके लागूं पॉय।
बलिहारि गुरु आपने गोविन्द दियो बताय।।

(कबीर ग्रन्थावली)

वास्तव में भारतीय गुरु परम्परा मनुष्य जीवन के उद्देश्यों के साथ मेल खाती हुयी श्रेयस्कर मार्ग की प्रवर्तक है। भारत के उन्नत वैभव व उत्कृष्ट शास्त्रीय परम्परा, विस्तृत एवं उन्नत साहित्य, कला साधना, आध्यात्मिक रहस्य इत्यादि सभी में भारतीय गुरु परम्परा ने ही भारत को शिखर पर पहुँचाया है। इस प्रकार की प्रणाली के ज्ञाता होने पर भी आज की मैकालयी शिक्षा पद्धति को ढोना हमारे लिये दुर्भाग्य की बात है। आज की शिक्षा प्रणाली में उत्कृष्ट गुरु परम्परा के वैशिष्ट्यों को समाविष्ट कर उसे सार्थकता प्रदान करने की आवश्यकता है। विभिन्न शास्त्रीय विषयों एवं कलाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर उन्नत पाठ्यक्रम तैयार किये जा सकते हैं। प्राचीन संस्कारवान् गुरु प्रणाली के अनुसार गुरु सानिध्य में अधिक से अधिक विद्यार्थी को रखकर उसमें विशेषज्ञता एवं संस्कारों का आधान किया जा सकता है।

वस्तुत: आदिकाल से मानव का शरीर, बुद्धि, मन और आत्मा का जो समुच्च्य था वही आज भी है। मानव के सत्व, रजस, व तमस की त्रिगुणमयी प्रकृति भी वही है। मनुष्य की आयु के अनुसार उसकी सहज आवश्यकतायें, आहार, निद्रा, भय, मैथुन, जैसी प्राकृतिक प्रवृतियाँ भी वही हैं किन्तु भौतिक लालसा के कारण मानव ने अपनी आवश्यकताएँ एवं असन्तोष में अत्यधिक वृद्धि की है जिससे उसके शरीर बुद्धि, मन और आत्मा में असंतुलन उपस्थित हो गया है फलत: वह शोकग्रस्तता की स्थिति को प्राप्त है। ऐसी स्थिति में जीवन के सच्चे उद्देश्यों के साथ मेल खाती भारतीय गुरु परम्परा के संस्कार ही आधिभौतिक, आधिदैविक व आध्यात्मिक दु:खों की निवृत्ति करते हुये जीवन सन्तोष प्रदान करने में सक्षम हैं। ❑

(सह–आचार्य, संस्कृत विभाग, राज. बा.ना. स्नातकोत्तर महा.चिमनपुरा, शाहपुरा, जयपुर)

प्राचीन भारतीय समाज में समरसता

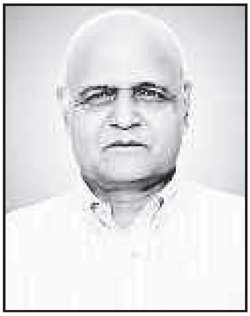

सूत जाति, जिन्हें स्व-उद्यमरत शूद्रों की जाति में गिना जाता रहा है, उन्हीं सूत जी को द्वापर युग के अन्त व कलि के प्रारम्भ में पुराणवेत्ता कहा है, जो ऋषियों को पुराणों का ज्ञान देते रहे हैं। ऋषियों के सम्मुख सभी पुराणों का विवेचन सूत जी ही करते हैं, पुराणों में यह बतलाया गया है। रामायण में सुमन्त दशरथ के, महाभारत में संजय व इसी प्रकार, हर वाल में सूतगण राजाओं के मंत्री तुल्य पारिवारिक सलाहकार हुआ ही करते थे। विवाह कर्म में दूल्हे का संरक्षकवत सूत्रधार, सलाहकार या यों कहें तो संरक्षक जैसी स्थिति में केवल नाई जाति का बन्धु ही होता आया है। द्रौपदी सैरिन्ध्री की भूमिका में राजा विराट की पत्नी की कर्मचारी होते हुये भी उनकी निकटतम सखी रही है।

❑ **डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा**

प्राचीन काल में हमारे देश में प्रचलित वर्ण व्यवस्था में ऊँच-नीच एवं अस्पृश्यता का सर्वथा अभाव रहा है। उस काल में समस्त लघु, मध्यम व वृहदाकार औद्योगिक उत्पादन क्रियाओं का सूत्रधार ही शूद्र रहा है। शूद्रों द्वारा उत्पादित इन्हीं समस्त मूल्यवान उत्पादों का क्रय-विक्रय व उससे सम्बन्धित वाणिज्यिक क्रियाओं के सम्पादन से ही वैश्य धनार्जन करता था। उस अर्जित धन पर ही करारोपण से राजा को कर या टैक्स प्राप्त होता था। शूद्र केन्द्रित उत्पादन व औद्योगिक क्रियाएँ शूद्र को उस काल में सर्वाधिक धनाढ्य बनाती थी। इसलिये महाभारत काल में राजकीय अतिथियों का निवासादि शूद्रों के यहाँ पर होता था। वेदाध्ययन भी शूद्र के लिये निषिद्ध न हो कर, वेद में ही शूद्रों को वेद पढ़ाने के निर्देश हैं। जातियाँ देश की व्यावसायिक व शिल्प श्रेणियाँ थी, लेकिन उनमें ऊँच-नीच व अस्पृश्यता का अभाव होने से, 80 पीढ़ी (1500 वर्ष) पहले विवाह भी अंतरजातीय ही होते थे। यह बात आज डी.एन.ए. अध्ययनों में भी उभर कर आयी है। इन्हीं सभी उपर्युक्त विषयों के कुछ प्राचीन व अर्वाचीन स्रोतों का अत्यन्त संक्षेप में यहाँ पर विवेचन किया जा रहा है।

हिन्दुत्व का विचार - ऊँच-नीच, अस्पृश्यता व छुआछूत रहित समरस समाज

हिन्दू जीवन पद्धति व दर्शन में जीव मात्र में एक ही परमात्मा का निवास मानकर सब जीवों के कल्याण में रत रहने का निर्देश है। यथा गीता में कहा है - मुझ परमात्मा को वे ही प्राप्त करते हैं जो समस्त जीवों के हित में संलग्न रहते हैं। यथा:

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।

(अ. 12 श्लोक श्रीमद् भगवद्गीता)

इसी प्रकार ईशावास्योपनिषद् के अनुसार समग्र ब्रह्माण्ड को एकमेव परमात्मा से ही परिव्याप्त देखने का निर्देश है, जहाँ ऊँच-नीच, भेदभाव व छुआछूत या अस्पृश्यता का कोई स्थान नहीं वरन् यह महापाप माना गया है।

मूल हिन्दू चिन्तन में ऊँच-नीच का कोई स्थान नहीं है। प्राचीन काल में शूद्र वर्ण उत्पादक वर्ग रहा है।

'शूद्र' शब्द क्षुद्र से नहीं बना वरन् यह उद्यमपरक है

यह आक्षेप असत्य है कि शूद्र शब्द 'क्षुद्र' शब्द से बना है। यह सर्वथा तथ्यों से परे है। शूद्र शब्द हेय नहीं है और यह क्षुद्र से नहीं बना है। अथर्ववेद के शब्दों की निरुक्ति (निर्वचन) में अपने

श्रम के स्वेद (पसीने) से विविध उत्पादकीय कार्य में रत वर्ग को शूद्र कहा गया है। अर्थात परिश्रम पूर्वक विविध प्रकार की मूल्यवान वस्तुओं के उत्पादन में रत रहने वाले वर्ग को शूद्र कहा गया है। यथा शूद्र शब्द का निर्वचन निम्नानुसार है -

श्रमस्य स्वेदेन उत्पादनरत एव शूद्रः

अर्थात् अपने परिश्रम के पसीने से सब प्रकार की मूल्यवान वस्तुएँ उत्पादित करने वाला शूद्र है। इसीलिये भारत पर हुये बाहरी आक्रमणों के पूर्व, अपने उत्पादन कार्यों के प्रतिफल स्वरूप शूद्र का समाज में आर्थिक व सामाजिक स्थान अत्यन्त उच्च रहा है। इसीलिये कामन्दक नीतिसार में कहा है कि राजा को नया नगर बसाते समय पर शूद्र, जो विभिन्न मूल्यवान वस्तुएँ उत्पादित करते हैं उन्हें व वैश्य, जो उन वस्तुओं के व्यापार से आय उत्पन्न करके राजस्व बढ़ाते हैं, उन्हें अधिक संख्या में बसाना चाहिये। इस नीति ग्रन्थ में यहाँ तक कहा गया है कि ब्राह्मण व क्षत्रिय राज्योपजीवी हैं, उन्हें राज्य को जीविका व भृत्ति (वेतन आदि) देनी होती है। इसलिये उनकी संख्या परिमित रखनी चाहिये। चूंकि मूल्यवान वस्तुओं का उत्पादन करने वाला यह वर्ग सर्वत्र फैला हुआ था और वह इस प्रकार के उत्पादन कार्य में संसाधन भी लगाने होते थे, इसलिये ही ऋग्वेद में ''परिवार की उत्पादकीय सम्पत्ति या उत्पादन कार्य में लगी सम्पत्ति को पूंजी कहा है।'' आज की पूंजी की आधुनिक परिभाषा में ''पूंजी मानव द्वारा उत्पादित, उत्पादन के साधनों'' को कहा जाता है। इसमें परिवार का उल्लेख नहीं है। चूंकि ब्राह्मण को भिक्षा वृत्ति से ही जीवन यापन करना होता था। क्षत्रिय अर्थात् क्षतात रक्षति इति क्षत्रिय (समाज को क्षति अर्थात अन्यायपूर्ण हिंसा से बचाये वह क्षत्रिय) को राजकोष से भृत्ति या वेतन मिलता था। सारी मूल्यवान वस्तुओं का उत्पादन करना शूद्र का ही कार्य था। सीसा, जस्ता, ताम्बा, सोना आदि धातुओं के उत्पादन उनसे विविध उपकरणों, बर्तन आदि का निर्माण, भूगर्भ से रत्न आदि निकालना, नौकाओं से लेकर शतरित्र (सौ-सौ चप्पूओं वाले जलयानों का निर्माण) का निर्माण वस्त्रोत्पादन, आभूषणों का उत्पादन, रथादि वाहनों का निर्माण, चर्म उत्पादों, धात्विक उत्पादों आदि का उत्पादन, सब कुछ शूद्र वर्ग के अधीन था। इसीलिये प्राचीन धर्म शास्त्रों में शूद्रों की उनके उत्पादन कार्य के अनुसार उत्पादन सापेक्ष 1200 से अधिक जाति या शिल्प श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। ये सभी अपने श्रम से विविध मूल्यवान वस्तुओं के निर्माता या मूल्यवान सेवाओं के प्रदाता व राज्य की अर्थव्यवस्था के आधार थे। विदेशी आक्रमणों के दौर के पूर्व उनका समाज में आर्थिक वर्चस्व रहा है। अनेक श्रेणियों का यह उद्यम या पेशा तो ब्रिटिश शासन में छिना है, जब यूरोपीय उत्पादों को यहाँ राज्य प्रश्रय दिया जाने लगा व शिल्पियों के अंगूठे तक कटा देने जैसे प्रकरण बढ़े।

जातियाँ शिल्प श्रेणियों से बनी हैं

वैदिक काल के अन्त होने के पूर्व 1200 से अधिक विविध शिल्प या उत्पाद या प्रदत्त सेवा के आधार पर आधारित जातियों का उद्भव हो चुका था। ये जातियाँ विभिन्न व्यवसायों एवं शिल्पों से सम्बन्धित थीं। इनकी श्रेष्ठता या कनिष्ठता का प्राचीन काल में कोई भेद नहीं रहा है। वाजसनेयी संहिता, तैत्तरीय संहिता, तैत्तरीय ब्राह्मण काठक संहिता (27/23), अथर्ववेद, ताण्ड्य ब्राह्मण (3/4), ऐतरेय ब्राह्मण, छान्दोग्य, बृहदारण्यकोपनिषद् धर्मसूत्रों, प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों एवं मेगस्थनीज के अपूर्ण उद्धरणों से पता चलता है कि ईसा के कई शताब्दी पूर्व कतिपय शिल्प व व्यवसाय आधारित जातियाँ विद्यमान थीं। मेगस्थनीज द्वारा 300 ईसा पूर्व काल में लिखी इण्डिका के अनुसार भारत के जन सात मुख्य शिल्प आधारित जातियों में विभाजित थे - (1) दार्शनिक, (2) कृषक, (3) गोपाल एवं गड़रिया, (4) शिल्पकार, (5) सैनिक, (6) अवेक्षक तथा (7) सभासद एवं करग्राही। अध्यक्ष एवं अमात्य, भी सम्भवतः तब जातिसूचक हो गये होंगे जो पद व्यवसाय के परिचायक हैं। सम्भवतः ये पद वशंपरम्परागत थे, अतः मेगस्थनीज ने इन्हें प्रमुख जातियों में गिना होगा।

राजकीय अतिथियों का आश्रय शूद्र

देश में उत्पादन की प्रचुरता एवं वह समग्र उत्पादन शिल्प-सापेक्ष शूद्र जातियों या श्रेणियों द्वारा ही किया जाना, और उसके आधार पर ही राजकोष से भी अधिक धन शूद्र जातियों के पास होता था। इसलिये राज्य के अतिथियों का आतिथ्य भी महाभारतकाल में शूद्रों पर अवलम्बित था। महाभारत में शूद्र का धर्म अतिथियों के सत्कार व उनके भोजन-आवास आदि बता कर उन्हें अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया है जिसका निम्न श्लोक में स्पष्ट कथन है।

स शूद्रः संशिततपा जितेन्द्रियः।
सुश्रुर्तिथिं तपः संचिनुते महत्।।
(महाभारत-अनुशासन पर्व)

शूद्र की साधन सम्पन्नता के प्रमाण

एगंस मेड्सिन के अनुसार विश्व का एक तिहाई उत्पादन भारत में होने व हमारे प्राचीन वाङ्मय के अनुसार समग्र उत्पादन का दायित्व शूद्रों के नियन्त्रण में होने से ही शूद्र राज्य की अर्थ व्यवस्था का भी प्राचीन काल में आधार होते थे। पूर्वोक्त अथर्ववेद व कामन्दक नीतिसार आदि के उद्धरणों के अनुसार शूद्र वर्ग द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के आधार पर अर्थ व्यवस्था का प्रमुख आधार माना गया है। इस आधार पर पुराणों के इस वचन की भी पुष्टि होती है कि शूद्रों के सर्वाधिक धनी होने के कारण उनकी मकान व भूमि के मापन का फीता या शूत्र स्वर्ण का हुआ करता था।

यही कारण है कि पुराणों व प्राचीन वास्तु ग्रन्थों आदि में शूद्र के भवन निर्माण

आदि में प्रयुक्त, नापने वाला सूत्र, फीता या डोरी को स्वर्ण निर्मित तक होना बतलाया है। जबकि ब्राह्मण का कुशा नामक घास का, क्षत्रिय का मूंज की डोरी का, वैश्य का कपास का व शूद्र का सुवर्णमयी डोर का।

ब्राह्मणस्य सूत्र दर्भजं,
मौजन्तु त क्षत्रियस्य।
कार्पासं च भवेद्वैष्ये,
स्वर्णनिर्मितं शूद्रस्य सूत्रम्।।

इसे अतिशयोक्ति भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि सारी लोक कथाओं में ब्राह्मण को निर्धन ही बतलाया गया है। क्षत्रिय को भी मित साधन वाला ही बतलाया जाता रहा है। अंग्रेजों द्वारा ब्रिटेन से लाये गए माल से ही देश के शूद्र के नाम से जाने वाले वर्ग का उद्यम चौपट हुआ है। चारों वर्णों की समानता: वस्तुत: शूद्रों को अछूत तो 1574 ईस्वी (सम्वत 1631) में रामचरित मानस लिखे जाने के समय भी नहीं माना जाता था। रामचरित मानस के उत्तरकाण्ड में तुलसीदासजी ने 441 वर्ष पूर्व 1574 ईस्वी में उससे अनेक सहस्त्राब्दियों पूर्व वाल्मीकि रचित रामायण के ही समान चारों वर्णों के लोगों द्वारा साथ-साथ जल भरने, स्नानादि का वर्णन किया है। यथा -

राज घाट बांधेऊ परम मनोहर।
तहाँ निमज्जिउ वरण चारिउ नर।।

इसी प्रकार सूत जाति, जिन्हें स्व-उद्यमरत शूद्रों की जाति में गिना जाता रहा है, उन्हीं सूत जी को द्वापर युग के अन्त व कलि के प्रारम्भ में पुराणवेत्ता कहा है, जो ऋषियों को पुराणों का ज्ञान देते रहे हैं। ऋषियों के सम्मुख सभी पुराणों का विवेचन सूत जी ही करते हैं, पुराणों में यह बतलाया गया है। रामायण में सुमन्त दशरथ के, महाभारत में संजय व इसी प्रकार हर काल में सूतगण राजाओं के मंत्री तुल्य पारिवारिक सलाहकार हुआ ही करते थे। विवाह कर्म में दूल्हे का संरक्षकवत सूत्रधार, सलाहकार या यों कहें तो संरक्षक जैसी स्थिति में केवल नाई जाति का बन्धु ही होता आया है। द्रौपदी सैरिन्ध्री की भूमिका में राजा विराट की पत्नी की कर्मचारी होते हुये भी उनकी निकटतम सखी रही है।

शूद्र वेदों के अधिकारी थे एवं वेद में शूद्र को वेदाध्ययन का समान अधिकार था। वेदाध्ययन के सन्दर्भ में भी सबसे मुख्य आक्षेप या आरोप यही आता है कि वेदों में शूद्रों के वेदाध्ययन का निषेध है। यह सर्वथा असत्य है। चारों में से किसी भी वेद में शूद्रों के लिये वेदाध्ययन के निषेध का कोई श्लोक नहीं है। इसके विपरीत यजुर्वेद 26(2) में शूद्रों को भी वेदाध्ययन कराने का निर्देश है।

शूद्र किसी से हेय है, यह भ्रान्ति भी निर्मूल है कि वेदों में शूद्र को समान अधिकार नहीं दिये। यथा -

''यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य:। ब्रह्मराजन्याभ्या शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे काम: समृद्धतामुप मादो नमतु।।''

(यजुर्वेद अ. 26 मंत्र 2)

अर्थ- मैंने (परमात्मा ने) जिस प्रकार यह वेद रूपी वाणी आपको (ऋषियों) को दी है, उसी प्रकार आप सभी इसे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य व शूद्र सभी को पढ़ाओ। अपने परिवारों में (स्वाय) वनों अर्थात् अरण्यों में रहने वाले (च अरण्याय) आदि सभी वर्गों को वेद पढ़ाओ। इस प्रकार वेदाध्ययन किसी के लिये निषिद्ध नहीं था।

प्राणी मात्र के प्रति भेदभाव रहित अपनत्व हिन्दुत्व की कसौटी

हिन्दुत्व में मनुष्य ही नहीं प्राणी मात्र के प्रति अगाध सद्भाव का निर्देश है। अपने से भिन्न किसी मत मतान्तर वालों के प्रति भी हिंसा का निर्देश नहीं है। हाँ, ऐसे दुराचारियों से समाज की रक्षार्थ संनद्ध रखना अवश्य धर्म कहा गया है। प्राणी मात्र के प्रति इसी प्रकार के सद्भाव की वरुण से प्रार्थना की गयी है यथा -

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा,
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

(यजुर्वेद 36/18)

भावार्थ: हे परमेश्वर! हम सम्पूर्ण प्राणियों में अपनी ही आत्मा को समाया हुआ देखें, किसी से द्वेष न करें और जिस प्रकार एकत्रित एक मित्र दूसरे मित्र का आदर करता है वैसे ही हम भी सदैव सभी प्राणियों का सत्कार करें।

सम्पूर्ण समाज आपस में परस्पर भेदभाव रहित व समरस व्यवहार करें, यह हमारे अथर्ववेद में स्पष्ट व असंदिग्ध निर्देश है। यथा

समानी प्रपा सह वोऽन्नभाग:
समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि।
सम्यं चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभित:।।

(अथर्व. 3.30.06)

भावार्थ- तुम्हारी जल शाला एक हो, अन्न का विभाजन साथ-साथ हो, एक ही जुए में तुम जुड़े हुए हो। जैसे पहिये के अरे धुरी (नाभि) में चारों ओर जुड़े होते हैं, वैसे ही तुम सब प्रजाजन मिलकर ज्ञानरूप प्रभु की पूजा करो।

ऋग्वेद व ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में पाँचों वर्गों यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व अरण्यवासियों की समितियों व परिषदों का पंचजना: कहा गया है। इस प्रकार राज्य व समाज की रचना में सभी वर्गों, वर्णों, श्रेणियों व जातियों का समान स्थान रहा है। पंचजनों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व अरण्यवासी अर्थात जनजातीय लोगों की शासकीय सभा, समिति व परिषदें होती थीं।

देश में 80 पीढ़ी पूर्व जन्म आधारित जातियों का अभाव

इन दिनों पुराआनुवंशिकी अर्थात् आर्कियोजेनेटिक्स (Archeogenetics)

के अन्तर्गत देश-विदेश के विविध जन समुदायों की आनुवंशिकी का अध्ययन भी वृहद् स्तर पर किया जा रहा है। भारत की विविध जातियों के जीनोम अर्थात् आनुवंशिकी के भी कई अध्ययन हुए हैं। पश्चिमी बंगाल स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ बायोमेडिकल जीनोमिक्स (National Institute of Biomedical Genomics) एवं कई अन्य शोध-संस्थाओं के अनुसार भारत में 60 से 80 पीढ़ी पूर्व अर्थात् 1200 से 1600 वर्ष पूर्व विवाह अपनी ही जाति में न होकर अंतरजातीय होते रहे हैं। इन जीनोमिक अध्ययनों (Genomic Studies) के अनुसार 1200 से 2000 वर्ष पूर्व अधिकांश विवाह अंतरजातीय ही होते रहे होंगे। इस संस्थान के असिस्टेंट प्रो. अनुलाभा बसु के अनुसार, दक्षिण भारतीय अय्यर ब्राह्मणों और तमिलनाडु के इरूला जनजातियों में कई उत्तर भारतीय वंशाणु अर्थात् जीन पाए गए हैं। विगत एक दशक में हुए ऐसे अध्ययनों के कई शोध-पत्र अमेरिका सहित कई देशों की विज्ञान की शोध पत्रिकाओं (जर्नल्स) में व्यापक रूप से प्रकाशित हुए हैं व निरंतर हो रहे हैं। अर्थात 60-80 पीढ़ी पूर्व अंतरजातीय विवाह ही प्रचलित थे।

जातियों में पेशे या व्यवसाय जनित आरोह-अवरोह

जब जिस जाति के व्यवसाय या पेशे का उत्कर्ष, अवसान या विलोपन हुआ अथवा जब जिस जाति को विशेष राज्याश्रय प्राप्त हुआ या छिना अथवा सत्ता में स्थान बना या बिगड़ा उससे जातियों का आर्थिक व सामाजिक परिवेश बदलता रहा है। यह बनजारा समुदाय के एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा कि जातियों का आरोह अवरोह होता रहा है। इसके अतिरिक्त अनेक हिन्दू ग्रन्थों में अंग्रेजों के काल में प्रक्षेप या कूट रचित श्लोक रचना से ऊँच-नीच का भेद, ईसाई मतान्तरण के लिये भी किया या धन

लोलुप संस्कृतज्ञों से करवाकर उन्हें प्रसारित किया गया है। अनेक ग्रन्थों में वे प्रक्षिप्त (जोड़े गये) श्लोक उनके विन्यास, छन्द, शब्द प्रयोग आदि से पृथक लगते हैं। ऐसे कुछ प्रकरणों का यहाँ उल्लेख समीचीन है-

बनजारा समुदाय - 'बंजारा', 'बनजारा' या 'वणजारा' शब्द मूलतः 'वाणिज्य' शब्द से उद्भूत 'वाणिज्यारा' शब्द का रूपान्तर है। बंजारा लोग प्राचीन अन्तर्देशीय व्यापारी व वाणिज्कि वर्ग से हैं। ये लोग, जब आवागमन के आधुनिक साधन नहीं थे, तब बैलों पर विविध प्रकार का सामान लादकर उनका व्यापार करते थे। कई सौ बेलों पर विविध स्थानों से माल क्रय कर उनका अन्य स्थानों पर विक्रय करते थे। इण्डोनेशिया से अरब तक इन बणजारों की बनायी अनगिनत झीलें इसकी साक्षी हैं। यथा मारवाड़ व मेवाड़ के बीच अजमेर में तो बंजारों की बनायी झील का नाम ही ''बणजारी झील'' है। उदयपुर की विश्व प्रसिद्ध झील पिछोला, जिसकी पाल पर ही सम्पूर्ण राजमहल बना है, और जिसके अन्दर व तटों पर विश्व के सर्वोत्कृष्ट होटल बने हुये हैं, बणजारों की बनायी हुयी है। अफगानिस्तान के गौर, पाकिस्तान के लाहौर तथा पेशावर में भी ऐसी झीलें हैं और इनकी संख्या अनगिनत है, क्योंकि उनका मौखिक इतिहास उस स्थान की जनश्रुति में ही है। मेवाड़ में 15 दिन तक प्रतिदिन छः घण्टे चलने वाले ''गौरी नृत्य नाटिका'' में राजा व नगर सेठ से भी अधिक धनी बणजारा को दिखलाया जाता है। उसे प्रत्येक राज्य के दाणी अर्थात् तत्कालीन कस्टम अधिकारी को अनेक प्रलोभन दिखाकर अपने व्यापारिक काफिले को निकालते दिखाया जाता है। आज अनेक राज्यों में बंजारे लोग अनेक शारीरिक श्रम आधारित काम करते देखे जाते हैं। कई राज्यों में वे अन्य पिछड़ा वर्ग में व कुछ में अनुसूचित जाति में हैं, आधुनिक वाणिज्य के दौर में उनकी अन्तर्देशीय व्यापार पद्धति अप्रासंगिक हो गयी।

कारखाना उत्पादों, जो प्रारम्भ में 18वीं व 19वीं सदी में इंग्लैण्ड से आते थे, के कारण भी लाखों-करोड़ों हस्त शिल्पी, बुनकर, लुहार आदि बेरोजगार हुये हैं। अनेक ऐसे कारीगर जजिया व जेहाद से विस्थापित भी किये गये थे। अंग्रेजों के शासन में नगरों के अप्रत्याशित विस्तार, नगरों में रोजगारों के संकेन्द्रण और नगरीय समाजों के स्तरीकरण, शासकीय स्तरों के विभेद आदि में भी समाज में ऊँच-नीच का व्यवहार बढ़ता गया जो कहीं-कहीं अस्पृश्यता की सीमा तक चला गया। ❑

(कुलपति, पेसेफिक वि.वि., उदयपुर)

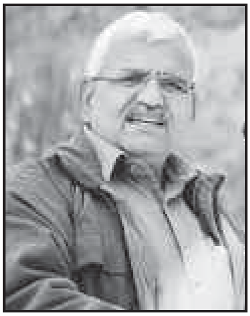

*महाकवि तुलसीकृत 'रामचरित मानस' परिवार जनित आदर्शों का संचित कोश है जिसमें पिता, पुत्र, माता, भ्राता, भगिनी, राजा, प्रजा, सहचर, मंत्री तथा भगवान और भक्त के सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत किए गए हैं। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है श्री राम का अपने पिता महाराज दशरथ की आज्ञा का पालन। यही वह शिखरस्थ मानदंड है जो राम को मर्यादा पुरुषोत्तम बनाता है। आज की युवा पीढ़ी अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करते हुए धैर्य, पुरुषार्थ तथा विनम्रता के गुण ग्रहण करे, उसी आशय से श्री हनुमान सिंह जी द्वारा प्रणीत पुस्तक 'कुटुम्ब प्रबोधन' का अध्याय-4 '**आज्ञा पालन**' प्रकाशित किया जा रहा है। - सम्पादक*

आज्ञा पालन

"**माँ** आपने ही कहा था कि धर्म, नीति और विज्ञान के विपरीत कार्य करने की आज्ञा कोई भी दे उसे नहीं मानना चाहिए। आपने भक्त प्रहलाद की कथा के प्रसंग में सम्भवतया यह कहा था।" नेहा ने पूछा।

"हाँ मैंने कहा था। किन्तु तुम यह क्यों पूछ रही हो? किसने तुम्हें नीति विरुद्ध कार्य करने को कहा?"

"कहा तो किसी ने नहीं। पर अभी नवरात्र में मैं रामचरित मानस का पाठ कर रही थी तो मुझे कुछ चौपाइयों पर संशय हुआ। मैंने उन्हें संकलित किया है। आपको सुनाऊँ क्या?"

"अवश्य सुनाओ। मैं रसोई में काम करती हुई सुन लूँगी फिर रात्रि में स्वाध्याय के समय उन पर चर्चा करेंगे।" माँ ने नेहा से कहा।

नेहा ने सस्वर चौपाइयाँ बोलना शुरू किया-

मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी।
बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी।।
सुनु जननी सोई सुतु बड़ भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोष निहारा।
दुर्लभ जननी सकल संसारा।।
धन्य जनमु जगती तल तासू।
पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू।।
चारि पदारथ करतल ताकें।
प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें।।
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका।
पितु आयसु सब धरमक टीका।।
जौं केवल पितु आयसु ताता।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।।
जौं पितु मातु कहेहु बन जाना।
तौ कानन सत अवध समाना।।
मातु पिता गुरु स्वामि सिख
सिर धरि करहिं सुभायँ।।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर।
नतरू जनमु जग जायँ।।
परसुराम पितु अग्या राखी।
भारी मातु लोक सब साखी।।
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ।
पितु अग्याँ अद्य अजसु न भयऊ।।
अनुचित उचित बिचारू
तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के
बसहिं अमरपति ऐन।।
कौसल्या धरि धीरजु कहई।
पूत पथ्य गुर आयसु अहई।।
सो आदरिअ करिअ हित मानी।
तजिअ बिसादु काल गति जानी।।
गुर पितु मातु स्वामी हित बानी।
सुनि मन मुदित करिअ भली जानी।।
उचित कि अनुचित किए बिचारू।
धरमु जाई सिर पातक भारू।।
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू।
सकल धरम धरनीधर सेसू।।
गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें।
चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें।।"

यकायक मधुर स्वर लहरी रुकी और माँ

उचित-अनुचित का निर्णय सुगम नहीं है। देश-काल-परिस्थिति के अनुसार इसका निर्णय होता है। प्राचीन काल में जिसे उचित मानते थे आज काल बाह्य है। भारत में जो बात अनुचित है वह अमरीका में उचित मानी जाती है। इसीलिए अपने यहाँ कहा है "महाजनो येन गतः स पन्थः।" इसलिए तुलसीदास जी ने बिना उचित-अनुचित का विचार किए बड़ों की आज्ञा मानने की जो बात कही है उसके पीछे यही भाव है कि हम अपनी बुद्धि के अनुसार उचित-अनुचित का तर्क करेंगे और अपनी तर्क की सीमा के अनुसार ही समझेंगे।

मुस्करा कर बोली– ''चौपाइयों का सुन्दर संग्रह किया है। अभी एक बार इन सबका अर्थ कागज पर लिखो और उनमें से समान बातें छाँटकर लिखो। फिर उन पर हम चर्चा करेंगे।''

नेहा ने क्रमशः अर्थ लिखना शुरू किया–

''माता, पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना विचारे शुभ समझकर करना चाहिए।'' (बा. 77/4)

''हे माता! सुनो वही पुत्र बड़भागी है, जो माता-पिता के वचनों का अनुरागी (पालन करने वाला) है। (आज्ञा पालन के द्वारा) माता-पिता को संतुष्ट करने वाला पुत्र, हे जननी! सारे संसार में दुर्लभ है।'' (अयो. 41/4)

''इस पृथ्वी तल पर उसका जन्म धन्य है जिसका चरित्र सुनकर पिता को परम आनन्द हो। जिसको माता-पिता प्राणों के समान प्रिय हैं, चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) उसके करतल गत (मुट्ठी में) रहते हैं।'' (अयो. 46/1)

''हे तात! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणी धर्म है।'' (अयो. 55/4)

''हे तात! यदि केवल पिता की आज्ञा हो, तो माता को बड़ी जानकर वन को मत जाओ। किन्तु यदि पिता-माता दोनों ने वन जाने को कहा है, तो वन तुम्हारे लिए सैंकड़ों अयोध्या के समान है।'' (अयो. 56/1)

''जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वाभाविक रूप से शिरोधार्य कर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ पाया है, नहीं तो जगत में जन्म व्यर्थ ही है।'' (अयो. दोहा-70)

''परशुराम जी ने पिता की आज्ञा रखी और माता को मार डाला; सब लोक इस बात के साक्षी हैं। राजा ययाति के पुत्र ने पिता को अपनी जवानी दे दी। पिता की आज्ञा पालन करने से उन्हें पाप और अपयश नहीं हुआ।'' (अयो. 174/4)

''जो अनुचित और उचित का विचार छोड़कर पिता के वचनों का पालन करते हैं, वे (यहाँ) सुख और सुयश के पात्र होकर अन्त में इन्द्रपुरी (स्वर्ग) में निवास करते हैं।'' (अयो. दोहा-174)

''कौशल्या जी भी धीरज धर कर कह रही हैं- हे पुत्र! गुरुजी की आज्ञा पथ्य रूप है। उसका आदर करना चाहिए और हित मानकर उसका पालन करना चाहिए। काल की गति को जानकर विषाद का त्याग कर देना चाहिए।'' (अयो.176/1)

''गुरु, पिता, माता, स्वामी और सुहृद् (मित्र) की वाणी को सुनकर प्रसन्न मन से उसे अच्छी समझकर करना चाहिए। उचित-अनुचित का विचार करने से धर्म जाता है और सिर पर पाप का भार चढ़ता है।'' (अयो. 177/2)

''माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा समस्त धर्म रूपी पृथ्वी को धारण करने में शेषनाग के समान है।'' (अयो. 306/1)

''गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा (आज्ञा) का पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने पर पैर गड्डे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)।'' (अयो. 315/3)

कागज पर अर्थ लिखने के बाद नेहा ने कुछ प्रमुख वर्णित विषय बिन्दुवार लिखे –

1. माता, पिता, गुरु, स्वामी की आज्ञा का पालन उचित-अनुचित का विचार किए बिना करना चाहिए।
2. बड़ों की आज्ञा का पालन करने से पाप या अपयश नहीं होता जैसे परशुराम व पुरू।
3. बड़ों की आज्ञापालन से चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है।
4. आज्ञा पालन सर्वोपरि धर्म है, स्वर्ग का मार्ग है।
5. आज्ञा का पालन न करने से धर्म तो जाता ही है, पाप भी बढ़ता है।
6. आज्ञा पालन से पतन नहीं होता।

नेहा ने ये सभी बिन्दु स्वाध्याय कक्ष में लगे फलक पर सुन्दर अक्षरों में अंकित कर दिए। सब उत्सुकता से उन्हें पढ़ने और अपना-अपना भाष्य करने में प्रवृत्त हो गए।

उसी समय संस्कृत के आचार्य जी ने घर में प्रवेश किया। बच्चों ने प्रणाम किया। उनका ध्यान फलक पर गया तो उत्सुकता से उन्होंने इसके सम्बन्ध में पूछा। बच्चों ने प्रकरण बताया। आचार्य जी भी चर्चा में शामिल हो गए। उन्होंने पूछा ''बच्चों आप 'आज्ञा' शब्द का अर्थ जानते हैं क्या?''

बच्चों को लगा आचार्य जी यह क्या प्रश्न पूछ रहे हैं?

''सभी जानते हैं आज्ञा यानि आदेश या हुक्म'' भरत ने तपाक से कहा।

''हाँ यह तो सभी जानते हैं। पर आपने फलक पर जो वाक्य लिखे हैं, उनका समाधान तो इस अर्थ से नहीं होगा जिसे सभी जानते हैं। आप लोगों ने फलक पर जो बिन्दु लिखे हैं उनसे मुझे लगता है आपको उन पर या तो विश्वास नहीं है या संदेह है। ऐसा है कि नहीं?''

''हाँ ऐसा ही है, और इस विषय में माँ से चर्चा के लिए ही हमने ये बिन्दु लिखे हैं।'' नेहा बोली।

''आज्ञा शब्द के प्रचलित शब्दार्थों से तो आप परिचित हैं पर इस शब्द की व्युत्पत्ति देखें। इसमें 'ज्ञ' धातु है जिसका अर्थ है 'जानना' और 'आज्ञा' अर्थात् सम्पूर्ण रूप से जानना।'' आचार्य जी बोले

''किन्तु इससे तो बात और उलझ गई। इस अर्थ का चौपाइयों से क्या सम्बन्ध है?'' भरत ने पूछा।

''ऊपर से देखने पर तो कोई संगति नहीं लगती पर इससे एक प्रश्न का उत्तर मिलता है कि आज्ञा कौन दे सकता है? जो सम्पूर्ण रूप से जानता है वह आज्ञा दे सकता है। जानते कैसे हैं? अनुभव से। ऐसा अनुभवी, ज्ञानी होने से ही आज्ञा देने की पात्रता आती है। इन चौपाइयों में किनको आज्ञा देने का अधिकारी माना है?'' आचार्य ने पूछा।

नेहा बोली– ''माता, पिता, गुरु, स्वामी व मित्र को।''

''आप सब परस्पर चर्चा कीजिए कि इनकी आज्ञा पालन का आदेश क्यों दिया है? तब तक मैं पिताजी से मिलकर आता हूँ।'' कहकर आचार्य जी चले गए।

बच्चों ने रसोई में जाकर फिर माँ को घेर लिया। माँ आचार्य के साथ बच्चों का वार्तालाप सुन रही थी। चर्चा का सूत्र भरत ने पकड़ा।

''माँ, इन सबकी बात हम इसलिए मानते हैं क्योंकि ये हमारे भले की बात कहते हैं।''

''पर तुम्हें कैसे पता भले की बात कहते हैं? तुम्हें कल खाँसी के उपचार का काढ़ा पीते हुए कैसा लग रहा था? और आइसक्रीम खाने से मना करने पर तुम्हारे चेहरे पर क्या भाव थे? खाँसी में काढ़ा पथ्य और आइसक्रीम कुपथ्य है पर तुम्हें काढ़ा पीने का कहना अनुचित और आइसक्रीम खाना उचित लग रहा था।'' माँ ने कहा।

''हाँ, लग रहा था।'' भरत ने सोचते हुए कहा।

''तब तुम्हारे लिए क्या हितकर है और क्या अहितकर, इसका निर्णय कौन करेगा? क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना चाहिए, यह पथ्य-परहेज रोगी तय करेगा या वैद्य?'' माँ ने कुरेदते हुए पूछा।

''यह तो वैद्य तय करेगा।'' नेहा बोली

''किन्तु वैद्य जो तय करेगा उससे लाभ किसको होगा? क्यों भरत! पथ्य-परहेज से किसे लाभ होगा?''

भरत समझ गया कि माँ का संकेत किस ओर है अत: शर्माते हुए बोला– ''लाभ तो रोगी को ही होगा माँ, उसका रोग जो ठीक होगा।''

''अच्छा, बीमार होने पर वैद्य के पास ही क्यों जाते हैं?'' माँ ने फिर प्रश्न किया।

''क्योंकि वो बीमारी ठीक करना जानते हैं। उन्होंने इसी की पढ़ाई की है।'' नेहा ने कहा।

''यही इन चौपाइयों में कहा है। माता, पिता, गुरु आदि अनुभवी हैं, अत: हमारे लिए जो उचित हो वही आज्ञा देंगे।'' माँ बोली।

तब तक पिताजी व आचार्य जी भी आ गए। अब मण्डली बैठक में जुड़ गई। आचार्य जी बोले – ''उचित-अनुचित का निर्णय सुगम नहीं है। देश-काल-परिस्थिति के अनुसार इसका निर्णय होता है। प्राचीन काल में जिसे उचित मानते थे आज काल बाह्य है। भारत में जो बात अनुचित है वह अमरीका में उचित मानी जाती है। इसीलिए अपने यहाँ कहा है ''महाजनो येन गत: स पन्थ:।'' इसलिए तुलसीदास जी ने बिना उचित-अनुचित का विचार किए बड़ों की आज्ञा मानने की जो बात कही है उसके पीछे यही भाव है कि हम अपनी बुद्धि के अनुसार उचित-अनुचित का तर्क करेंगे और अपनी तर्क की सीमा के अनुसार ही समझेंगे। परशुराम के कार्य की समालोचना हम आज की मान्यता के आधार पर करेंगे तो अनुचित कार्य लगेगा पर उस काल में कर्म को देखने की दृष्टि आज से भिन्न रही होगी। अत: हमारे लिए क्या उचित है, क्या अनुचित इसका निर्णय आप्तजनों के संकेत और अपने विवेक पर छोड़ना उचित रहता है।''

पिताजी ने वार्ता में भाग लेते हुए कहा–

''इस पर एक और दृष्टि से विचार करना चाहिए। हमारे यहाँ कर्तव्यों की मीमांसा है, पश्चिम की तरह अधिकार की भाषा नहीं।''

बच्चों को बहुत से शब्द समझ भी नहीं आ रहे थे। वार्ता अब बड़ों के मध्य चल पड़ी। बच्चों को फिर भी आनन्द आ रहा था।

''हाँ यह भी एक कारण है। तुलसीदास जी इसी ओर संकेत कर रहे हैं। कर्तव्य कर्म में प्रश्न, प्रति प्रश्न नहीं होते। प्रश्नातीत होने पर ही कर्तव्य पालन होता है। जहाँ अधिकारों की भाषा है वहीं क्यों करूँ तथा मैं ही क्यों करूँ का प्रश्न है। मुझे माता, पिता, गुरु और स्वामी के प्रति कर्तव्य का पालन करना है उसका निर्वहन मैं जितनी दक्षता, श्रद्धा व समर्पण से करता हूँ उतना ही मैं अपने अधिकारों का रक्षण-पोषण कर पाता हूँ। इसलिए एक के कर्तव्य में दूसरे के अधिकारों की पूर्ति निहित है। अर्थात् हमें कर्तव्य भाव से माता, पिता, गुरु की आज्ञा पालन करना चाहिए और आज्ञा देने वाले को चाहिए कि वह सांगोपांग विचार करके देश-काल-परिस्थिति के अनुसार आज्ञा दे।''

आचार्य जी ने वार्ता का समापन करते हुए बच्चों की ओर देखा, ''क्यों बच्चों कुछ समाधान हुआ? कुछ प्रश्न रह गए हों तो अपनी माँ से पूछना। अच्छा अब चलता हूँ।'' सब परिजन आचार्य जी को अभिवादन कर द्वार तक छोड़ने आए। ❑

विश्वविद्यालयों की परीक्षा प्रणाली में बदलाव की तैयारी

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार की पहल के तहत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) परीक्षा प्रणाली में ग्रेड एवं क्रेडिट ट्रांसफर, संतुलन पद्धति, मांग आधारित परीक्षा, आंतरिक परीक्षा तथा बाह्य परीक्षा समेत परीक्षा पैटर्न में बदलाव की तैयारी कर रहा है। यूजीसी के एक अधिकारी ने बताया कि आयोग द्वारा उच्च शैक्षिक संस्थानों में इन संरचनात्मक एवं प्रणालीगत परिवर्तन के बारे में विभिन पक्षकारों से राय मांगी गई थी। उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर बनाने के लिये आयोग ने सभी उच्च शैक्षणिक संस्थाओं में परीक्षा सुधार के लिये विशेष निर्दिष्ट विषय वस्तु पर विचारपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने के लिये सुझाव भी माँगे थे।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अपना यह विचार चर्चा के लिए आगे बढ़ाया कि परीक्षा सुधारों के एक हिस्से के रूप में स्नातक डिग्री के अंतिम वर्ष के विद्यार्थियों के लिए अखिल भारतीय परीक्षा आयोजित की जाए। यूजीसी ने इस प्रस्तावित परीक्षा को क्षमता की जाँच का नाम दिया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस प्रस्ताव पर विभिन्न विश्वविद्यालयों, उच्च शिक्षण संस्थानों के शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के अलावा जन सामान्य से निर्धारित तिथि तक उनके विचार आमंत्रित किए। समय-समय पर आयोग ने उच्च शैक्षणिक संस्थानों में अकादमिक सुधार लाने के लिए विविध सुधार एवं परिवर्तन भी किए। उच्च शैक्षिक संस्थानों द्वारा अधिगम परिणामों पर आधारित पाठ्यक्रम प्रारूप के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण, विकास एवं नियमित संशोधन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की एक महत्त्वपूर्ण पहल है। परीक्षा सुधार कार्य इस दिशा में किए गए प्रमुख कार्य परिवर्तनों में से एक है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने क्षमता की जाँच यानी एबिलिटी टेस्ट लागू करने से पहले इस प्रस्ताव पर प्रतिक्रिया माँगी, लेकिन इस प्रस्ताव के बारे में अभी यह स्पष्ट नहीं है कि यह परीक्षा वर्तमान बीए, बीकॉम, बीएससी आदि की फाइनल परीक्षा का विकल्प परीक्षा के बाद विद्यार्थियों को पुनः देनी होगी। यह भी स्पष्ट नहीं है कि विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए विश्वविद्यालय द्वारा लिए जाने वाली अंतिम वर्ष की परीक्षा का स्थान लेगी या फिर यह परीक्षा विश्वविद्यालय द्वारा ली जाने वाली परीक्षा के अतिरिक्त किसी दूसरी परीक्षा के रूप में होगी।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आधिकारिक सूत्रों के अनुसार यह योजना एमबीबीएस के विद्यार्थियों के लिए प्रस्तावित, 'एग्जिट टेस्ट' की नीति के आधार पर बनाई गई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि एग्जिट टेस्ट के रूप में एमबीबीएस के छात्रों के लिए यह प्रस्तावित किया गया है कि विश्वविद्यालय द्वारा एमबीबीएस के अंतिम वर्ष की परीक्षा लिए जाने तथा डिग्री दिए जाने के स्थान पर, एमबीबीएस के अंतिम वर्ष की परीक्षा अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित की जाए। यूजीसी का मन्तव्य है कि देश भर में स्नातक स्तर की परीक्षाओं का एक ही स्तर हो। वर्तमान में हर शिक्षण संस्था अपने-अपने स्तर पर परीक्षा आयोजित करती है और अलग-अलग योग्यता वाले स्नातक निकालती है। आयोग ने उच्च शैक्षणिक संस्थाओं में अकादमिक सुधार के उद्देश्य से शिक्षक, छात्र, परीक्षा नियंत्रक, शिक्षा कार्मिक, प्रतिष्ठित शिक्षाविद और जन साधारण से सुझाव माँगे गए हैं। इसके तहत शिक्षा के विभिन्न पक्षकारों से परीक्षा प्रणाली के उद्देश्य, भारत में अनुसरण किए जा सकने योग्य परीक्षा प्रणाली में अपेक्षित संरचनात्मक एवं प्रणालीगत परिवर्तन के बारे में राय माँगी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रौद्योगिकी हस्तक्षेप, प्रश्नकोष, न्यूनतम मानवीकृत संरचना की जरूरत तथा डिग्री के अंत में सभी स्नातक पूर्व छात्रों की क्षमता की जाँच के महत्त्व के बारे में राय माँगी। आयोग ने उच्च शिक्षण संस्थाओं में मूल्यांकन प्रक्रिया, परीक्षा परिणाम की घोषणा तथा अंकतालिका एवं डिग्रियाँ प्रदान करने के विषय पर भी राय माँगी। आयोग के सूत्रों का कहना है कि अनगिनत उच्च शिक्षण संस्थानों द्वारा अलग-अलग अधिगम (लर्निंग) स्तर के स्नातक तैयार करने के बजाए एक न्यूनतम स्तर सुनिश्चित करने में इस प्रस्तावित प्रणाली का निर्धारण करने में मदद मिलेगी। आयोग का एक अन्य प्रस्ताव दूरस्थ शिक्षा तथा ऑनलाइन पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों के लिए 'एग्जाम ऑन डिमांड' कराए जाने के अभी हाल ही में शीर्ष विश्वविद्यालयों को ऐसा करने की अनुमति प्रदान कर दी गई है, किन्तु इस मामले में थोड़ी सी आवश्यक गुंजाइश जरूर छोड़ी गई है कि संबंधित परीक्षा कब-कब ली जाएगी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इंदिरा गाँधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी कई वर्षों से 'ऑन डिमांड' परीक्षाएँ आयोजित करती आ रही है। किसी क्षेत्र के विद्यार्थी जिस समय परीक्षाएँ चाहते हैं, उसके आसपास की ही किसी अवधि में स्थानीय केन्द्रों पर इन परीक्षाओं का आयोजन समय-समय पर कर दिया जाता है। आयोग ने जिन अन्य बिन्दुओं पर सुझाव माँगे हैं, उसमें तकनीक आधारित परीक्षाएँ और वर्तमान व्यवस्था में अपेक्षित एवं संभव परिवर्तन शामिल है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जब स्नातक छात्रों की क्षमता जाँच के लिए अखिल भारतीय स्तर पर परीक्षा आयोजित करने का विचार रखती है तो विभिन्न स्तर पर सरकारी सेवाओं के लिए आयोजित की जाने वाली परीक्षाओं को समाप्त किया जाना चाहिए और क्षमता जाँच में उत्तीर्ण छात्रों की विषयानुसार सरकारी सेवाओं में लिए जाने का भी प्रावधान किया जाना चाहिए।

रुक्टा (राष्ट्रीय) का प्रदेश चिंतन वर्ग जयपुर में सम्पन्न

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ से सम्बद्ध राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) का प्रदेश चिंतन वर्ग 15 से 17 जून 2018 तक जयपुर के ग्लोबल इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी कैम्पस में सम्पन्न हुआ।

सात विविध सत्रों में आयोजित इस वर्ग में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखिल भारतीय सम्पर्क प्रमुख प्रो. अनिरुद्ध देशपाण्डे, राजस्थान सह क्षेत्र प्रचारक श्री निम्बाराम, राजस्थान क्षेत्र बौद्धिक प्रमुख श्री ग्यारसीलाल, राजस्थान क्षेत्र कार्यवाह श्री हनुमान सिंह, अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल व राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेंद्र कपूर ने उपस्थित रहकर सम्भागियों को पाथेय प्रदान किया।

वर्ग के उद्घाटन सत्र में राजस्थान क्षेत्र सह प्रचारक श्री निम्बाराम ने कहा कि भारत की पहचान हिंदुत्व ही है, यही भारत का स्वभाव दर्शन और उसकी आत्मा है। हिंदू दर्शन को निकाल देने पर भारत केवल एक भूखंड मात्र रह जाएगा। उन्होंने कहा कि 'वसुधैव कुटुंबकम्' की हमारी समृद्ध अवधारणा वर्तमान वैश्वीकरण से पूर्णतया भिन्न है। वैश्वीकरण उपभोक्तावाद को बढ़ावा देता है, जबकि हम प्रकृति से समन्वय की बात करते हैं। उन्होंने नेशन व राष्ट्र में अंतर स्पष्ट करते हुए बताया कि नेशन केवल एक राजनैतिक, भौगोलिक इकाई का अर्थ देता है जबकि राष्ट्र भावात्मक एवं सांस्कृतिक संकल्पना है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी हिंदुत्व को जीवन पद्धति तथा जीवन दर्शन स्वीकार किया है। उन्होंने कहा कि पूजा पद्धति राष्ट्रीयता नहीं है बल्कि समान शत्रु मित्र भाव को मानने वाला ही सच्चा राष्ट्रभक्त होता है। उन्होंने आह्वान किया कि आज राष्ट्रप्रेम से युवा पीढ़ी को डिगाने की कोशिश हो रही है, ऐसी स्थिति में हमें प्रमुख भूमिका में आकर अपनी संस्कृति के प्रति गौरव की अनुभूति स्थापित करनी होगी।

वर्ग के सामूहिक सत्र में अखिल भारतीय सम्पर्क प्रमुख प्रो. अनिरुद्ध देशपाण्डे ने संगठन के समक्ष उपस्थित चुनौतियों को रेखांकित करते हुए वर्ग में भाग ले रहे शिक्षक बंधु-भगिनियों का आह्वान किया कि मानविकी व समाज-विज्ञानों के विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों पर अब भी औपनिवेशिक काल की छाया मंडरा रही है, जबकि हमें स्वतंत्र हुए सात दशक बीत चुके हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस छाया से शीघ्रातिशीघ्र मुक्त हों। प्रो. देशपाण्डे ने कहा कि एक शिक्षक का कर्त्तव्य-बोध कक्षाओं तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। एक शिक्षक का दायित्व है कि वह समाज के प्रत्येक अंग को अपने सद्गुणों से आलोकित करे। उन्होंने कहा कि परिवार के बाद समाज में व्यक्ति निर्माण का सबसे विश्वसनीय घटक शिक्षक ही होता है। उन्होंने शिक्षक के लिए स्टेकहोल्डर शब्द को अनुचित बताते हुए कहा कि स्टेकहोल्डर में कुछ प्राप्त करने का भाव आता है जो पश्चिम में प्रचलित उपयोगितावाद में प्रयोग किया जा सकता है किंतु भारत में शिक्षक समाज परिवर्तन का वाहक है। उन्होंने अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के संबंध में विचार रखते हुए बताया कि अंग्रेजी का एक भाषा के रूप में अध्ययन करना ठीक है किंतु इसके कारण विद्यार्थी में अपनी मातृभाषा के लिए तुच्छता का भाव पैदा हो, यह चिंतनीय है। उन्होंने चिंता प्रकट करते हुए कहा की संवाद रहित टेक्नोलॉजी द्वारा ज्ञान नहीं दिया जा सकता ज्ञान के लिए सिर्फ (गूगल) पर निर्भर रहना उचित नहीं है। टेक्नोलॉजी साध्य के स्थान पर साधन के रूप में प्रयुक्त हो तथा शिक्षा

रुक्टा राष्ट्रीय द्वारा पर्यावरण एवं स्वास्थ्य जागरुकता हेतु साइकिल रैली

राजस्थान विश्वविद्यालय और महाविद्यालय शिक्षक संघ(राष्ट्रीय) की अजमेर इकाई द्वारा एक साइकिल रैली का आयोजन दिनांक 13 जून, 2018 को प्रात: किया गया। जिसमें रुक्टा- राष्ट्रीय से सम्बद्ध लगभग 70 शिक्षकों ने भाग लिया।

रैली के समापन के बाद एक बैठक का आयोजन भी किया गया, जिसमें रुक्टा- राष्ट्रीय के प्रदेश सह संगठन मंत्री डॉ सुशील बिस्सू ने अपने उद्बोधन में बदलते परिवेश के कारण पर्यावरण पर पड़ रहे विपरीत प्रभावों पर घोर चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि इस वर्ष इतनी भीषण गर्मी पड़ी है कि सिंचन के बावजूद हजारों पेड़ जल गए। इस हेतु विशेष प्रयत्न करने की आवश्यक है। उन्होंने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति कम से कम एक छायादार वृक्ष ही न केवल लगाए, बल्कि उसकी पूरी सार सम्भाल करे, साथ ही अपने जन्मदिन के साथ स्वयं द्वारा लगाए वृक्ष का भी जन्मदिन समारोहपूर्वक मनाए। आज पर्यावरण की जो नेमत हमें मिली है, वह हमारे पूर्वजों की सूझबूझ और श्रम का परिणाम है। उन्होंने उपस्थित शिक्षकों और विद्यार्थियों से आह्वान किया कि सप्ताह में एक दिन ईंधन की बचत के साथ-साथ पर्यावरण की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए 'नो व्हीकल डे' रखना चाहिए। प्रयास यह हो कि सभी साईकल पर महाविद्यालय आएँ। यदि अधिक दूरी पर रहते हों, तो कम से कम व्हीकल पूल करके आएँ या सार्वजनिक परिवहन के साधनों का प्रयोग करें। अंत में इकाई सचिव डॉ. एल. डी. सोनी एवं साईकल रैली आयोजन सचिव डॉ. अनूप आत्रेय ने सभी का आभार जताया।

विद्यार्थी के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करने वाली हो तभी शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों की प्राप्ति हो सकती है।

बौद्धिक सत्र में राजस्थान क्षेत्र कार्यवाह श्री हनुमानसिंह ने बताया कि एक राष्ट्र-सापेक्ष शिक्षक-संगठन के कार्यकर्त्ता का कर्म-अधिष्ठान राष्ट्र ही होना चाहिए। उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता को उद्धृत करते हुए प्रतिपादित किया कि जो करणीय है, वही कर्म है। उन्होंने कहा कि एक कार्यकर्त्ता को स्थित प्रज्ञ रहते हुए समभाव से अपने करणीय में निरत रहना चाहिए। भ्रमर-कीट न्याय के सिद्धांत के आधार पर हमें दूसरों को प्रेरित करना चाहिए कि वह हमारे अधिष्ठान को समझें। श्री हनुमानसिंह का विचार था कि समाज को विभेदित करने के प्रत्येक प्रयत्न को विफल करके हमें एक समरस समाज की रचना में ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए, क्योंकि इसी में हमारा कल्याण है। उन्होंने श्री गुरुजी द्वारा उडुपी (गुजरात) सम्मेलन में धर्माचार्यों को एक मंच पर लाने का उदाहरण देते हुए बताया कि अहंकार को विगलित कर देने से आप परस्पर विरोधी चरित्रों को भी एक मंच पर बैठा सकते हैं। उन्होंने आह्वान किया कि हमें मन, कर्म, वचन से इतना पवित्र होना चाहिए कि कोई अपारदर्शिता नहीं रहे।

वर्ग के सामूहिक संवाद सत्र में श्री हनुमान सिंह ने वर्तमान के वैचारिक संघर्ष की पृष्ठभूमि को रखते हुए कहा कि राष्ट्रीय विचार को लेकर एक बौद्धिक संघर्ष खड़ा किया गया है किंतु यह निश्चित है कि विजय सत्य की ही होती है। संवाद सत्र में संभागियों द्वारा वर्तमान की चुनौतियाँ के संबंध में अपने अभिमत प्रकट किए गए। श्री हनुमान सिंह ने संभागियों द्वारा आए विभिन्न विषयों और प्रश्नों पर बोलते हुए कहा कि विमर्श के लिए सैद्धांतिक और व्यवहारिक दोनों रूपों में कार्य करना आवश्यक है। उन्होंने बताया कि कई स्वयंसेवी संस्थाओं (एनजीओ) की भूमिका बहुत ही संदिग्ध रही है, वामपंथियों ने एनजीओ के माध्यम से ऐसा बड़ा विमर्श किया खड़ा किया है जो पूरी तरह अंतरराष्ट्रीय षड्यंत्र के रूप में है। कम्युनिज्म का आधार वर्ग संघर्ष में है, इसके परिणामस्वरुप ये लोग देश में विभिन्न प्रकार के विभाजन के आंदोलन छेड़ते रहते हैं। उन्होंने इस संबंध में शिक्षकों को अध्ययन, लेखन व शोध में सक्रिय रूप से कार्य करने का आह्वान किया।

वर्ग में विभिन्न संभागों - जयपुर, जोधपुर और चित्तौड़गढ़ - के अनुसार चक्रीय बैठकों के रूप में तीन तकनीकी सत्र संपन्न हुए, जिनमें सम्भागियों को श्री जगदीशप्रसाद सिंघल, श्री महेंद्र कपूर व श्री ग्यारसीलाल का पाथेय प्राप्त हुआ। श्री जगदीशप्रसाद सिंघल ने संगठन की यात्रा और विचार-प्रवाह को स्पष्ट करते हुए कार्यकर्त्ताओं का आह्वान किया कि वे संगठन के माध्यम से राष्ट्रीय चिंतन-धारा का प्रसार करके अपने जीवन को सार्थक स्वरूप प्रदान करें। श्री सिंघल का विचार था कि शिक्षक में ही वह शक्ति निहित है, जिसके चलते हमारा राष्ट्र बड़े-बड़े संकट-वलयों से बाहर निकल सकता है।

श्री महेंद्र कपूर ने अपने उद्बोधन में संगठन की गति-प्रगति को सतत बनाए रखने के विभिन्न साधनों का उल्लेख करते हुए कहा कि इकाई-स्तर पर सक्रियता बने रहना ही संगठन कि सफलता का मूल आधार है। उन्होंने कहा कि हमारे विचार-परिवार में नए सदस्यों को सम्मिलित करने का उद्यम लोगों को राष्ट्र-सेवा के पथ पर लाने का पुनीत अवसर होता है। हमें धीर-गम्भीर होकर इस दिशा में आगे बढ़ते रहना चाहिए। उन्होंने सम्भागियों का आह्वान किया कि वे प्रवास करने का अभ्यास अवश्य करें, क्योंकि प्रवास ही एक ऐसा माध्यम है - जो व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ते हुए हमें राष्ट्र-सेवा के लिए प्रवृत्त करता है।

श्री ग्यारसीलाल जाट ने सम्भागियों को अखिल भारतीय शैक्षिक महासंघ और राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) के पवित्र लक्ष्यों की जानकारी दी और संगठन की कार्यपद्धति स्पष्ट की। उन्होंने बताया कि हमारा संगठन एक व्यवस्थित नीति और परम्परा के अनुसार चलता है, जिसमें सभी कार्यकर्त्ता समान रूप से महत्त्व प्राप्त करते हैं। उन्होंने कहा कि हमें कई जन्मों के पुण्य-प्रसादस्वरूप मानव जीवन मिला है और इसकी सार्थकता इसी में है कि हम इसे राष्ट्र की सेवा में लगा दें। चक्रीय सत्रों में द्विआयामी संवाद की प्रक्रिया अपनाई गई। अधिकारियों ने स्वयं सम्भागियों से प्रश्न पूछे और उनके विचार जाने। सम्भागियों ने भी खुलकर अपनी प्रतिक्रिया दी तथा अपनी जिज्ञासाएँ भी प्रकट कीं, जिनका युक्तियुक्त रूप से समाधान किया गया।

समारोप सत्र में प्रो. अनिरुद्ध ने अपने उद्बोधन में कहा कि राष्ट्रीय शब्द के प्रयोग करने से सिद्धांतों का एक समुच्चय हमारे ध्यान में आता है। इस देश की शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेजों के प्रभाव के कारण हमारे मूल दृष्टिकोण से हमें दूर किया गया। जैसे आर्यों को आक्रमणकारी व बाहर से आने वाला गलत सिद्धांत हमें पढ़ाया जाता रहा, उन्होंने कहा कि सामूहिकता ही हमारी आत्मीय पहचान है, संगठन की सक्रियता ही विचार के प्रवाह का आधार है संगठन हमारे स्वार्थों की पूर्ति का साधन नहीं बल्कि भारत माता की जय के वृहद लक्ष्य का आधार है। उन्होंने विश्वास प्रकट किया कि विचार और संगठन की दो धाराओं का सहज सम्मिलन हमें सदा राष्ट्र-सेवा के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करता रहेगा।

इस चिंतन वर्ग में प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों-महाविद्यालयों में कार्यरत दो सौ पंद्रह शिक्षक कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ

उच्च शिक्षा संवर्ग की राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक दिल्ली में सम्पन्न

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के उच्च शिक्षा संवर्ग की राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक 10 जून 2018 को हरियाणा भवन, नई दिल्ली में संपन्न हुई।

संपूर्ण देश के 20 राज्यों से आए विभिन्न राज्य संगठनों एवं विश्वविद्यालय संगठनों के 120 से अधिक अध्यक्ष एवं महामंत्रियों ने बैठक में भाग लिया।

बैठक का शुभारंभ महासंघ के अध्यक्ष प्रो. जे. पी. सिंघल द्वारा दीप प्रज्वलन एवं सामूहिक सरस्वती वंदना के साथ हुआ। प्रथम सत्र में संभागियों का राज्य व संगठन अनुसार परिचय के बाद प्रत्येक विश्वविद्यालय व राज्य संगठन द्वारा वर्ष भर की प्रमुख गतिविधियों का संक्षिप्त प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया। अगले चरण में उच्च शिक्षा संवर्ग के सचिव प्रो. मनोज सिन्हा ने महासंघ की गतिविधियों का, विशेष रूप से यूजीसी के नए वेतनमान के संबंध में किए गए प्रयासों व उपलब्धियों की जानकारी देते हुए बताया कि महासंघ द्वारा समय-समय पर यूजीसी अध्यक्ष एवं मानव संसाधन विकास मंत्री से नियमित रूप से वार्ता कर शिक्षकों का पक्ष समुचित रूप से प्रस्तुत किया गया, फलस्वरूप पिछले रेगुलेशन की कई समस्याओं का समाधान हुआ।

उन्होंने बताया कि महासंघ के घनीभूत प्रयासों से एपीआई पीबीएस तंत्र की समाप्ति, विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षकों के पदों में एक समान, स्नातक व स्नातकोत्तर प्राचार्य को एक ही प्रोफेसर ग्रेड में रखने की व्यवस्था, प्रोफेसर पद पर सीमा की समाप्ति, जुलाई 2016 तक एपीआई अंकों की बाध्यता में शिथिलता, एसोसिएट प्रोफेसर हेतु पीएचडी सुपरविजन की आवश्यकता की समाप्ति, वार्षिक वेतन वृद्धि हेतु जनवरी व जुलाई दो विकल्प की व्यवस्था, एक रेगुलेशन से दूसरे रेगुलेशन में स्मूथ मूवमेंट के लिए 2 वर्ष का प्रावधान, यूजीसी जर्नल्स की लिस्ट में से बिना कारण हटाए गए जर्नल्स हेतु स्पष्टीकरण जारी होने जैसे शिक्षक हित के निर्णय पर चर्चा हुई।

इसके बाद संभागियों ने उच्च शिक्षा क्षेत्र की चुनौतियों एवं समस्याओं, विशेषकर नवीन यूजीसी वेतनमानों एवं ड्राफ्ट रेगुलेशन पर विस्तृत चिंतन मंथन किया। सदन ने नवीन सेवा शर्तें शीघ्र जारी करवाने, नवीन यूजीसी वेतनमानों को पूरे देश में एक समान लागू करवाने, पीएचडी और एम फिल की वेतन वृद्धियों को पुनः चालू करवाने, सातवें वेतन आयोग को लागू करने हेतु राज्यों को केंद्रीय सहायता का अंश न्यूनतम 80 प्रतिशत 5 वर्ष तक देने, वेतन नियतन हेतु गुणांक न्यूनतम 2.67 करने, शिक्षकों की ठहराव अवधि 7 घंटे के स्थान पर 5 घंटे करने तथा कार्यभार में न्यूनतम शब्द हटाने, असिस्टेंट प्रोफेसर (सलेक्शन स्केल) व एसोसिएट प्रोफेसर पद पर सीएएस प्रमोशन हेतु पीएचडी की अनिवार्यता वापस लेने, यूजीसी के माइनर व मेजर रिसर्च प्रोजेक्ट जारी रखने, अतिथि अध्यापन व्यवस्था समाप्त कर सभी तरह के शैक्षणिक व अशैक्षणिक पदों को पूर्णतया भरे जाने, कोर्स वर्क हेतु सवैतनिक अवकाश की व्यवस्था करने अथवा सेवारत शिक्षकों को कोर्स वर्क से मुक्त करने, उच्च शिक्षा पर जीडीपी का न्यूनतम 6 प्रतिशत व्यय करने, असिस्टेंट प्रोफेसर पद पर चयन प्रक्रिया को न्याय संगत बनाने सहित शिक्षक हित की अन्य समस्याओं पर मजबूती से कार्य करने की आवश्यकता व्यक्त की।

महासंघ के अध्यक्ष प्रो. जे.पी. सिंघल व उच्च शिक्षा संवर्ग के सचिव डॉ. मनोज सिन्हा ने महासंघ के प्रयासों के संबंध में जानकारी देते हुए बताया कि शीघ्र ही नवीन सेवा शर्तें जारी होनी है तथा अधिकांश समस्याओं को मजबूत ढंग से महासंघ द्वारा केंद्र सरकार के समक्ष रख दिया गया है। उन्होंने विश्वास दिलाया कि सदस्यों की अपेक्षा के अनुरूप महासंघ इन समस्याओं को सुलझाने के लिए और गहन प्रयास करेगा।

महासंघ के संगठन मंत्री श्री महेंद्र कपूर ने बैठक के अंतिम सत्र में कार्य के विस्तार और दृढ़ीकरण की आवश्यकता जताते हुए गुरुवंदन, कर्तव्यबोध, नवसंवत्सर, शाश्वत जीवन मूल्य जैसे कार्यक्रमों हेतु और गंभीर प्रयासों की आवश्यकता जताई। उन्होंने आह्वान किया की अध्ययन, संपर्क, प्रेम और समर्पण यही संगठन को बढ़ाने एवं मजबूत करने के मूल मंत्र हैं।

संगठन के महामंत्री श्री शिवानंद सिन्दनकेरा ने अक्टूबर माह में इंदौर में आयोजित होने वाले राष्ट्रीय अधिवेशन के बारे में विस्तृत जानकारी दी। बैठक की अध्यक्षता उपाध्यक्ष-उच्च शिक्षा संवर्ग, प्रो. प्रग्नेश शाह ने की तथा आभार संवर्ग के सह सचिव डॉ. नारायण लाल गुप्ता ने व्यक्त किया। बैठक में राष्ट्रीय सह संगठन मंत्री श्री ओमपाल सिंह, उच्च शिक्षा संवर्ग प्रभारी श्री महेंद्र कुमार तथा अतिरिक्त महामंत्री डॉ. निर्मला यादव की गरिमामय उपस्थिति रही।

दिल्ली अध्यापक परिषद के प्रतिनिधि मण्डल की महापौर से भेंटवार्ता

दिल्ली अध्यापक परिषद का एक प्रतिनिधिमंडल 18 जून 2018 को महापौर महोदय, पूर्वी दिल्ली नगर निगम और अध्यक्ष महोदय, स्थाई समिति, पूर्वी दिल्ली नगर निगम से शिक्षकों के ट्रांसपोर्ट अलाउंस को काटने के संदर्भ में मिला।

प्रतिनिधिमंडल ने महापौर को जानकारी दी कि पूर्व में भी कई बार शिक्षकों के जून माह के ट्रांसपोर्ट अलाउंस को काटा गया और बाद में दे दिया गया। पर इस बार वार्षिक कैलेंडर में बदलाव कर शिक्षकों का ट्रांसपोर्ट अलाउंस काटने का सुनियोजित प्रयास किया जा रहा है। अतः उन से अनुरोध किया गया कि वह इस संदर्भ में उचित कार्यवाही करते हुए शिक्षकों को जून माह का ट्रांसपोर्ट अलाउंस दिलवाएँ ताकि उनके साथ कोई आर्थिक भेदभाव ना हो। इस हेतु दिल्ली अध्यापक परिषद द्वारा सुझाव दिया गया कि विद्यालयों को दक्षिणी दिल्ली नगर निगम की भांति 3 दिन पूर्व ही खोल लिया जाए ताकि बच्चों के आने से पूर्व सभी प्रकार की व्यवस्थाएँ पूरी की जा सके। महापौर महोदय ने आश्वासन दिया कि शीघ्र ही इस संदर्भ में उचित कार्यवाही करते हुए शिक्षकों का ट्रांसपोर्ट अलाउंस दिलवाने का पूरा पूरा प्रयास किया जाएगा।

गतिविधि

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ उत्तराखण्ड का प्रदेश कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग सम्पन्न

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ उत्तराखण्ड द्वारा प्रदेश कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग का उद्घाटन 24 जून 2018 को श्री गोवर्धन सरस्वती विद्या मन्दिर इण्टर कॉलेज, धर्मपुर, देहरादून के सभागार में किया गया। उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय सह संगठन मंत्री श्री ओमपाल सिंह ने उत्तराखण्ड के 13 जिलों से आये प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा व महिला संवर्गों के शिक्षकों को अपने सम्बोधन में कहा कि संगठन में प्रतिभाग से अधिक साथी शिक्षकों को प्रेरणा द्वारा जोड़ने व संगठन को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। श्री सिंह ने वर्तमान परिस्थितियों में राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के दर्शन, वैज्ञानिक भूमिका तथा समाज के लिये शिक्षकों की प्रेरणा की महत्ता पर प्रकाश डाला। उन्होंने तटस्थ व दूरस्थ शिक्षकों को जोड़कर और व्यापक स्वरूप दिये जाने के लिए मित्रवत व्यवहार व लगातार संगठन के सदस्यों/ कार्यकर्ताओं को नवाचार आधारित कर्मो की महत्ता भी समझायी।

प्रारम्भ में प्रदेश संयुक्त मंत्री डॉ. अनिल नौटियाल ने संगठन को एकमात्र शैक्षिक गतिविधियों आधारित संगठन बताया व दिये गये दायित्वों के साथ कार्यकर्ता का भाव बनाये रखने पर जोर दिया। उन्होंने राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ में कार्य करने से प्रतिष्ठा, सम्मान, पहचान व शिक्षकों की समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव सभी शिक्षकों को दिये।

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की महिला संवर्ग की अध्यक्षा डॉ. रश्मि त्यागी रावत ने महिला संवर्ग को अधिक मजबूत करने तथा सभी को शिक्षकों के कर्तव्यों के निर्वहन करने का आह्वान किया।

उद्घाटन में प्रदेश महामंत्री बी.बी. जोशी, संगठन मंत्री यशवंत सिंह नेगी व सह संगठन मंत्री शिवनारायण ने भी उपस्थित शिक्षक समुदाय को सम्बोधित किया तथा कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग में सहभागीता बढ़ाने के लिये विचारधारा आधारित कार्यों की महत्ता समझायी। अन्य सत्रों में कार्यकर्ताओं की कार्यशैली, प्रकृति व अन्य संगठनों व समाज में उनकी भूमिका पर विस्तृत चर्चा की गयी। इसके साथ ही बैठकों में सेवाशर्तें, वेतनमान, विसंगतियाँ, सरकार का रवैया व शिक्षक संगठन के नाते कार्यकर्ताओं की भूमिका भी तय की गयी।

अभ्यास वर्ग के दूसरे दिन प्राथमिक शिक्षक संवर्ग, माध्यमिक शिक्षक संवर्ग तथा उच्च शिक्षा संवर्ग की समस्याओं व उनके समाधान पर चर्चा हुई जिसे प्रदेश सरकार के सम्मुख प्रस्तुत कर शीघ्र ही निराकरण के प्रयास शुरू कर दिये जायेंगे।

कार्यक्रम के एक सत्र को सम्बोधित करते हुए श्री महेन्द्र कुमार, उच्च शिक्षा संवर्ग प्रभारी, अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ ने अपने सम्बोधन में सहभागिता कर रहे शिक्षकों व शिक्षिकाओं से कहा कि शैक्षिक महासंघ में विचार धारा आधारित राष्ट्रीय पुनर्निर्माण पर जोर दिया जाता है। उन्होंने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त को अपनाने का आह्वान किया। श्री कुमार ने संगठन की कार्य पद्धति के हिसाब से शिक्षकों को स्वयं में बदलाव लाना जरूरी बताया ताकि श्रेष्ठ भारत में शिक्षकों की भूमिका निर्धारित हो सके।

अभ्यास वर्ग के समापन सत्र में श्री युद्धवीर (प्रान्त प्रचारक, रा.स्व.संघ) ने शिक्षकों को बताया कि समर्पण व विश्वास से ही संगठन में सफलता का अंकुरण होता है व संगठन का कार्य बढ़ने का मुख्य आधार उसमें अच्छे कार्यकर्ताओं की उपस्थिति है। उन्होंने कहा कि जिम्मेदारी के बंटवारे व निर्धारण से संगठन की न सिर्फ शक्ति बढ़ती है बल्कि सफलता के साथ वांछित परिणाम भी प्राप्त होते हैं। समापन सत्र में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के सह संगठन मंत्री श्री ओमपाल सिंह ने मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए कहा कि प्राथमिक से विश्वविद्यालय तक के शिक्षकों का संगठन होने के नाते यह महासंघ है। उन्होंने जिलेवार सदस्यता बढ़ाने पर भी जोर दिया।

कार्यक्रम में राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ, उत्तराखण्ड की कार्यकारिणी का भी पुनर्गठन किया गया, डॉ. प्रशान्त सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, रसायन शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. महाविद्यालय, देहरादून को कार्यकारी अध्यक्ष नियुक्त किया गया। जिसमें टिहरी से डॉ. अनिल नौटियाल को प्रदेश महामंत्री व हल्द्वानी से बी.बी. जोशी को प्रदेश उपाध्यक्ष नियुक्त किया गया। अभ्यास वर्ग में प्रमुख रूप से प्रान्त संगठन मंत्री यशवन्त सिंह नेगी, सह संगठन मंत्री शिव नारायण, कोषाध्यक्ष कृष्ण चन्द बेलवाल, संयुक्त मंत्री शंकर सिंह व अन्य कार्यकर्ता उपस्थित रहे। दो दिवसीय अभ्यास वर्ग का सम्पूर्ण संचालन डॉ. हरनाम सिंह ने किया।

श्रद्धांजलि

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ के द्वारा बी.आर.सी. भवन शाहपुर में प्रान्त अध्यक्ष स्व. श्री रजनीश चौधरी की पुण्य स्मृति में शोकसभा व श्रद्धांजलि कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में जिला व प्रान्त के पदाधिकारियों के अलावा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा अधीनस्थ विभिन्न संगठनों ने भाग लिया। उनके परिवार की और से बड़े भाई ब्रिगेडियर श्री पवन चौधरी भी कार्यक्रम में उपस्थित रहे। जिला मंत्री व प्रान्त प्रचार सचिव डॉ. जोगिन्दर सिंह ने उनके जीवन वृत तथा जिला अध्यक्ष श्री पवन कुमार ने संस्मरण प्रस्तुत किये। प्रान्त संगठन मंत्री व राष्ट्रीय संयुक्त सचिव श्री पवन मिश्रा ने अपने गहरे साथी के खोने का दर्द बयाँ किया। शिक्षा मंत्री के ओ.एस.डी. डॉ. मामराज पुंडीर ने भी उनके साथ बिताये पलों को याद किया।

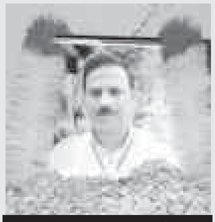

स्व. श्री रजनीश चौधरी

राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर ने उनकी असामयिक देहांत को संगठन व परिवार के लिये अपूर्णीय क्षति बताया तथा संगठन को मजबूती प्रदान करने को उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होने की बात कही। कार्यक्रम का संचालन प्रान्त महामंत्री श्री जगवीर चंदेल ने किया। कार्यक्रम के अंत में दो मिनट का मौन रख कर उनकी पुण्यात्मा की शांति के लिये प्रार्थना की। इस अवसर पर प्रान्तीय अतिरिक्त महामंत्री विनोद सूद, प्रान्त मीडिया प्रभारी, दर्शन लाल, सुधीर गौतम प्रान्त उपाध्यक्ष, रविदत्त शर्मा, हेमराज, बलबीर सिंह, प्रदेश के समस्त जिलों के अध्यक्ष व पदाधिकारी, डाईट धर्मशाला से अजय आचार्य, संदीप शर्मा मुख्याध्यापक, जिला काँगड़ा के सभी बी.आर.सी.सी., उपेन्द्र दत्त, देशराज, सुनील धीमान सहित करीब 300 सदस्यों ने इस शोक सभा में भाग लिया।